पंचम अध्याय

'चित्रलेखा' उपन्यास में चित्रित जीवन दर्शन : दार्शनिक पक्ष

दार्शनिक का अर्थ-विश्लेषण, समस्याप्रधान उपन्यास,
तत्कालीन आचार-विचार, रहन-सहन,
जीवन क्या है, प्रवृत्ति मार्ग, निवृत्ति मार्ग,
नियतिवाद, प्रेम की विवेचना,
पाप-पुण्य की समस्या का वर्णन।

पंचम अध्याय

चित्रलेखा उपन्यास में चित्रित जीवन दर्शन : दार्शनिक पक्ष

भारतीय उर्वरा भूमि की यह प्रमुख विशेषता रही है कि यहाँ के साहित्यिक बहुमुखी प्रतिमा से युक्त अर्थात चिंतक, विचारक, चिकित्साशास्त्री, ज्योतिषशास्त्री आदि विविध ज्ञान-विज्ञानों के ज्ञानी रहे हैं। 'अखंडमंडलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्' में जिस परमशक्ति का उल्लेख किया गया है, उसका स्वरूप क्या है? वह क्या है? वह कैसी है? उसका अस्तित्व क्यों हैं? येही प्रश्न तो दर्शन के मूल हैं। इन सभी प्रश्नों का जिसमें समावेश किया जाता है, वही दार्शनिक पक्ष कहलाता है। प्रकृति के नूतन एवं अद्भूत रहस्य साहित्यिक की जिज्ञासा को उत्प्रेरित करते हैं। दार्शनिक तथा साहित्यिक प्रकृति के इन्हीं नूतन रहस्यों का उद्घाटन अपने-अपने ढंग से करते हैं। साहित्यकार 'सत्यं-शिवं-सुंदरम्' - परम सत्ता की आराधना 'सुंदरम्' के रूप में और दार्शनिक 'सत्यम्' के रूप में करता है। परंतु दोनों का साध्य 'शिवम्' है। एक भावना जगत का प्राणी है, वह साहित्यिक है, और दूसरा बौद्धिक उहापोह में जानेवाला, दार्शनिक है।

'चित्रलेखा' उपन्यास पूरी तरह से दार्शनिक है। उसका वातावरण ऐतिहासिक है, मगर वह ऐतिहासिक या सामाजिक उपन्यास न होकर वह दार्शनिक उपन्यास है। इसका कारण यह उपन्यास एक समस्या प्रधान उपन्यास है, और इसकी प्रमुख समस्या ही दर्शनशास्त्र की है। जैसे पाप और पुण्य किसे कहते हैं? उसीप्रकार जीवन किसे कहते हैं? जीवन के मार्ग कौन-कौनसे हैं? जीवन का सच्चा मार्ग कौन-सा है? जीवन में प्रेम की जगह क्या है? इन सभी प्रश्नों पर दार्शनिकता में विचार किया जाता है? और ये सभी प्रश्न समस्या स्वरूप में 'चित्रलेखा' उपन्यास के शुरू में ही उपस्थित हुए हैं। इससे स्पष्ट होता है कि 'चित्रलेखा' उपन्यास समस्या प्रधान दार्शनिक तत्व पर चलनेवाला उपन्यास है।

जब हम किसी वस्तु का विश्लेषण करने बैठते हैं तो वास्तव में उसके आनंद से हम हाथ धो बैठते हैं। साहित्य तो जीवन का प्रतिरूप है। जीवन के अध्ययन की बात हम सोच ही नहीं सकते, उसका केवल अनुभव ही किया जा सकता है। करीब-करीब इसी बात को 'चित्रलेखा' के लेखक ने उपन्यास के रूप में विश्लेषण करके दिखाया है। इस उपन्यास में प्रत्यक्ष अनुभव को महत्त्व दिया है। पाप और पुण्य की जानकारी अनुभव से ली है। 'चित्रलेखा' उपन्यास में इसीलिए महाप्रभु रत्नांबर अपने दोनों शिष्यों से कहते हैं कि - 'जो बात अध्ययन से नहीं जानी जा सकती है, उसको अनुभव से जानने का प्रयत्न करने के लिए मैं तुम दोनों को संसार में भेज रहा हूँ।' [1] महाप्रभु रत्नांबर के इस कथन से एक बात स्पष्ट होती है कि 'नीरे विचार से अनुभव ही कीमती है - कोरा ज्ञान नहीं' [2] हम देखते हैं कि 'चित्रलेखा' में जीवन के प्रश्नों को उजागर किया दिखाई देता है उसमें अनुभव ही प्रधान है। उसमें वर्णित जो सत्य और असत्य वर्णन दिखाई देता है वह भी ठोस अनुभव के आधार पर ही हुआ है।

उपन्यास में पूरे जीवन का ही वर्णन दिखाई देता है। एक सच्चे उपन्यास में एक व्यक्ति का संसार होता है। उसे ही कला-मर्मज्ञों ने प्रधान पात्र का नाम दिया। जीवन में एक व्यक्ति अकेला नहीं रहता, कितने ही व्यक्ति उसके साथ जुडे रहते हैं। वह उन सभी को प्रभावित करता है, और स्वयं भी उनसे प्रभावित होता है। इस व्यक्ति

के आचार-विचार, रहन-सहन, आदान-प्रदान से ही उसके चरित्र के बारे में पता चलता है। येही सभी प्रकार की बातें उपन्यास में देखने को मिलती हैं। उस मुख्य व्यक्ति के आधार पर ही पूरे उपन्यास का विकास आधारित रहता है। यदि उस उपन्यास का प्रमुख पात्र भावुक है, तो उसका जीवन भावना प्रधान है। यदि वह चिंतनशील है, या वह दार्शनिक है, जो उसका जीवन समस्या प्रधान होगा। इससे यह स्पष्ट होता है कि उस उपन्यास का प्रमुख पात्र जैसा होता है, वैसा ही पूरा उपन्यास होता है। इस प्रकार हम यह देखते हैं कि 'चित्रलेखा' उपन्यास के बीजगुप्त में दार्शनिकता, चिंतनशीलता और प्रेम का अभूतपूर्व सम्मिश्रण मिलता है, परिणाम स्वरूप पूरे उपन्यास में वर्णित संसार की पृष्ठभूमि दार्शनिक बन गई है। [3]

दार्शनिक पक्ष में अनेक सामाजिक समस्याओं का समावेश होता है। जैसे 'जीवन क्या है?' 'जीवन में बुद्धि, भावना और प्रवृत्ति में कौन बलवान है?' मनुष्य के कार्यों को तौलनेवाले समाज द्वारा निर्मित पाप-पुण्य के तराजू की क्या असलियत है? और 'प्रेम क्या है?' उस प्रेम के अंत तक पहुँचने के लिए कितने कठिन रास्तों से जाना पड़ता है? जीवन के लिए जो मार्ग बनाए गए हैं, उन मार्गों में जो आदर्श हैं, उनमें कौन श्रेष्ठ हैं? ये सब जीवन के बारे में ही प्रश्न हैं, मगर ये सभी प्रश्न दार्शनिक हैं, और सभी प्रश्नों पर 'चित्रलेखा' उपन्यास में प्रकाश डाला है। इन्हीं प्रश्नों के आधार पर ही वर्माजी ने 'चित्रलेखा' उपन्यास की निर्मिति की है। उन्होंने सभी प्रश्नों को अनुभव के सहारे स्पष्ट किया है। उपन्यास के अंत में लेखक स्वयं अपने विचार रत्नांबर के रूप में आकर कह देते हैं - 'यह मेरा मत है, तुम लोग इससे सहमत हो या न हो, मैं तुम्हें बाध्य नहीं करता और न कर सकता हूँ। जाओ सुखी रहो।' [4]

'चित्रलेखा' उपन्यास में लेखक का अनायास ही नियतिवादी दृष्टिकोण दिखाई देता है। वर्माजी का लिखा उपन्यास यह एक दार्शनिकता का जीता जागता चित्रण है। वर्माजी संसार में जो पाप-पुण्य होता है उसमें व्यक्ति कुछ नहीं कर सकता है। उसमें नियति का हाथ होता है। इसी प्रकार के विचार वर्माजी अंत में महाप्रभु रत्नांबर के मुख से कहते हैं - 'मनुष्य अपना स्वामी नहीं है, वह परिस्थितियों का दास है - विवश है। वह कर्ता नहीं है, वह केवल साधन है।' [5] वर्माजी ने इसी समस्या के आधार पर उपन्यास का विकास किया है। उपन्यास के प्रारंभ में ही इस समस्या का उद्घाटन किया है। उपन्यास के मध्य में उस संघर्ष को बढ़ाया है और अंत में वह संघर्ष चरमसीमा पर पहुँचा दिखाया है। पाप और पुण्य के प्रश्न को प्रस्तुत करने के लिए वर्माजी कहते हैं 'उपन्यास में वासना, प्रेम, प्रवृत्ति-निवृत्ति आदि का विवेचन किया है। इसी उद्देश्य से योगी, भोगी, ब्रह्मचारी, सामंत तथा नर्तकी आदि विविध पात्रों को विशेष रूप से प्रस्तुत करते हुए पात्रों के विचार एवं तर्कपूर्ण विनिमय का आश्रय लिया गया है।' [6] यहाँ पर पात्रों की निर्मिति ही समस्या को उजागर करने के लिए की गई है। पात्रों की सहायता से पाप-पुण्य के बारे में चित्रण किया हुआ दिखाई देता है। पात्रों के आचार-विचार से ही पाप और पुण्य का पता चलता है। महाप्रभु रत्नांबर के माध्यम से पाप-पुण्य विषयक दृष्टिकोण प्रस्तुत करने के लिए 'उपसंहार' तथा 'उपक्रमणिका' का आयोजन किया गया है। उपन्यास पढ़ने के बाद यह स्पष्ट होता है कि सभी घटनाएँ एवं पात्र किसी न किसी रूप में इस समस्या से जुड़े हैं। इन सभी पात्रों में जो प्रमुख पात्र है, बीजगुप्त वह तो स्थान-स्थान पर परिस्थिति विषयक दृष्टिकोण प्रकट करता हुआ दिखाई देता है। वह पाटलिपुत्र का सामंत है, भोगी है फिर भी उसके आचार-विचार में पुण्य छिपा है, दार्शनिकता छिपी दिखाई देती है। यह उपन्यास मूल

रूप में दार्शनिक है, तथा इसका मुख्य पात्र भी दार्शनिक ही है। 'चित्रलेखा' में पाप-पुण्य को न केवल नवीन ढंग से व्याख्यायित किया गया, अपितु भारतीय नैतिकता के मूल आधार को ही झकझोर कर रख दिया है। 'चित्रलेखा' के प्रकाशन के पूर्व साहित्य में श्लील और अश्लील को लेकर एक विवाद खड़ा हो गया था। परकीय नारी का संघर्ष पाप है या पुण्य? उस समय परदा पद्धति थी। उस समय परिधि में बंद नारी का बाहर आकर स्वच्छंद रूप में सांस लेना श्लील है या अश्लील है? इसी तरह के कई प्रश्न समाज में निर्माण होते थे। जैसे बिना विवाह किए भी स्त्री और पुरुष पति-पत्नी की तरह साथ रह सकते हैं या नहीं? उनका यह कृत्य पाप है या पुण्य? इसी प्रकार के अनेकानेक प्रश्न समाज के सामने निर्माण होते थे। उसी समय समाज का बुद्धिजीवी वर्ग दो दलों बंट कर इन प्रश्नों का खंडन-मंडन कर रहा था। इसी जीवन मूल्यों के संक्रांतिकाल में 'चित्रलेखा' की रचना हुई। इस उपन्यास के सहारे लेखक को इस प्रकार के प्रश्नों को दिखाने का, स्पष्ट करने का मौका मिला। इसी प्रकार वर्माजी योगी एवं भोगी-दो पात्रों का संयोजन करके उन्होंने इन दोनों के माध्यम से प्रवृत्ति एवं निवृत्ति का आपस में द्वंद्व दिखाते हुए पाप-पुण्य की समस्या व्यक्तिसापेक्ष होती है, इसी का चित्रण करते हुए पाठकों के सामने रखा है।

पुण्य के बारें में अगर कहना है तो साधारणतः धर्म, नीति, पारंपरिक, सामाजिक विधान आदि के अनुकूल आचरण को पुण्य की संज्ञा दी जाती है एवं उसके विपरीत किए गए व्यवहार को पाप माना जाता है। पाप-पुण्य की समीक्षा से जुड़े अनेक महत्त्वपूर्ण प्रश्न भी हैं, जो इस उपन्यास में बार-बार उठाए गए हैं - 'जैसे विवाह, प्रेम, धर्म, ईश्वर, व्यक्ति, परिस्थिति इन सभी प्रश्नों को लेखक ने इस उपन्यास में समय आनेपर सही वक्त पर ज्वलंत प्रश्न के रूप में सामने रखे हैं।' [7] उपन्यास का नाम अगर देखते हैं, तो वह चरित्रप्रधान होने की गवाही देता है। चित्रलेखा का प्रभाव उपन्यास के सभी पात्रों पर पड़ा दिखाई देता है। सारे पात्र टाइप न होकर विशेष हैं। योगी-भोगी, नर्तकी, ब्रह्मचारी, सामंत सब के सब लगता है विशिष्ट प्रकार के निर्मित हुए हैं। सभी अपनी-अपनी जगह सुबुद्ध और ज्ञानी हैं, किंतु सभी परिस्थितियों के दास हैं। लेकिन सभी पात्रों का शुरू में जो चरित्रांकन दिखाई देता है, उसमें अंत तक बदल दिखाई देता है। सभी पात्र अपनी सक्ति-आसक्ति, ज्ञान-अज्ञान से बेखबर नहीं है। और अपना अज्ञान स्पष्ट करने में वे संकोच भी नहीं करते। इसका सही उदाहरण महाप्रभु रत्नांबर है। वे अपने शिष्यों के सामने अपने अज्ञान खोलते हुए कहते हैं - 'हाँ, पाप की परिभाषा करने की मैंने भी कई बार चेष्टा की है, पर सदा असफल रहा हूँ। पाप क्या है, और उसका निवास कहाँ है - यह एक कठिन समस्या है, जिसको आज तक नहीं सुलझा सका हूँ। अविकल परिश्रम करने के बाद, अनुभव के सागर में उतरने के बाद भी जिस को नहीं हल कर सका हूँ, उसे किस प्रकार तुमको समझा दूँ?' [8] इसी प्रकार अन्य सभी पात्र भी अपनी तुच्छताओं को स्वीकार करते हैं। चित्रलेखा अपने दोषों का उल्लेख कर कुमारगिरि के सम्मुख नत होती है और बीजगुप्त के सामने पश्चाताप भी करती है। उसी प्रकार कुमारगिरि अपने अंदर निर्माण हुए काम को दबाने का प्रयत्न नहीं करते बल्कि 'चित्रलेखा' द्वारा प्रताड़ित हो जाते हैं। तथा स्वयं पश्चाताप की आग में जलते हैं। श्वेतांक भी कई बार अपने स्वामी बीजगुप्त के सामने सत्य को व्यक्त करके अपनी गलतियों के लिए क्षमा माँगते हुए कहता है - 'स्वामी, मैंने आपके साथ विश्वासघात करने का अपराध किया है। मैंने उस स्त्री से प्रेम करने का अपराध किया है, जो आपसे प्रेम करती है और जिससे आप प्रेम करते हैं, और साथ ही जो मेरी स्वामिनी है।' [9] बीजगुप्त भी अपनी भूलों या दोषों को छिपाने की जगह श्वेतांक या चित्रलेखा को

विस्तार से बढ़ावा देता है। इस प्रकार इस उपन्यास के सभी पात्र एक दूसरे को बाँधते, छोड़ देते हैं, उसी प्रकार एक दूसरे की ओर आकृष्ट करते हैं, फिर जोड़ देते हैं। इस प्रकार कई पात्रों में आसक्ति-विरक्ति, योग-भोग का द्वंद्व प्रत्येक पात्र में देखने को मिलता है।

जीवन क्या है? इस प्रश्न पर विचार करने पर इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जीवन के बिना समस्या का कोई महत्त्व नहीं। जीवन में इन्हीं समस्याओं का सामना करना पड़ता है, इसलिए जीवन में इनका महत्त्व है। इसी जीवन को समझने के लिए वर्माजी ने अनुभूति का सहारा लिया है। वर्माजी इस उपन्यास के माध्यम से समझाना चाहते हैं कि जीवन वही है जिसे हम देखते हैं - 'जीवन अविकल कर्म है, न बुझनेवाली पिपासा है। जीवन हलचल है, परिवर्तन है और हलचल तथा परिवर्तन में सुख और शांति का स्थान नहीं।' [10] इसी प्रकार दिन के बाद रात और रात के बाद दिन, सुख के बाद दुख और दुख के बाद सुख आता है। इसका तात्पर्य है कि जहाँ कर्म है, वही उसकी प्रतिक्रिया (परिणाम) भी होना स्वाभाविक है और इसीलिए वह जीवन को केवल क्रिया और प्रतिक्रिया के रूप में देखते हैं। 'जीवन का नियम है कर्म और जहाँ क्रिया है, वही प्रतिक्रिया भी है।' [11] सच ही है कि मानव-जीवन में कर्म करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। वर्माजी का भी यही मत है। जीवन को इसी नजर से वे देखते हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपनी विशिष्ट परिस्थितियों में जन्म पाता है और वह किसी निश्चित विधान के अनुरूप कर्म करता है या उसे करने के लिए बाध्य होना पड़ता है। मनुष्य को चाहते हुए भी इस विधान से मुक्ति नहीं मिल सकती है, इसलिए वह विवश है, स्वतंत्र नहीं, परिस्थितियों या अदृष्ट के विधान में बंधा हुआ निरीह, परतंत्र है, वह कर्ता नहीं, केवल साधन है। 'प्रत्येक व्यक्ति इस संसार के रंगमंच पर एक अभिनय करने आता है। अपनी मनःप्रवृत्ति से प्रेरित होकर अपने पाठों को दुहराता है, यही मनुष्य का जीवन है। जो कुछ मनुष्य करता है, वह उसके स्वभाव के अनुकूल होता है, स्वभाव प्राकृतिक है। मनुष्य अपना स्वामी नहीं, वह परिस्थितियों का दास है, विवश है। वह कर्ता नहीं, वह केवल साधन है।' [12]

'नियति' की कल्पना बड़ी ही विचित्र है, जो मनुष्य में निराशावादी धारणा को जन्म देती है। वह मनुष्य को केवल असमर्थ और विवश करने का गुण रखती है, अतः नियति बड़ी समर्थ है। विश्व का प्रत्येक व्यक्ति इस 'नियति' की सत्ता में विश्वास अवश्य करता है। चाहे वह आस्तिक हो, चाहे नास्तिक। वर्माजी तो एक आस्थावादी कलाकार हैं, उन्हें 'नियति' के सामर्थ्य में विश्वास है, तथा वह ईश्वर, भगवान और खुदा को अदृष्ट के रूप में मानते हैं। इसी नियति के प्रभाव से कुमारगिरि सदृश महान योगी भी नहीं बन पाता है, जिसने संसार की समस्त वासनाओं पर विजय पाई थी। संसार उसके लिए साधन भर है, स्वर्ग उसका लक्ष्य है। वह नियति के समक्ष झुक जाता है - 'हे भगवान इसमें क्या रहस्य छिपा? तुम्हारी क्या इच्छा है जो तुम्हारी इच्छा होगी।' [13] बीजगुप्त के नियति के बारे में भी विचार कुछ ऐसे हैं - 'हमारे प्रत्येक कार्य में अदृश्य का हाथ है। उसकी इच्छा ही सब कुछ है।' [14] इस प्रकार की परिस्थिति का कारण यह है कि 'मनुष्य परतंत्र है परिस्थितियों का दास है, लक्ष्यहीन है। एक अज्ञात शक्ति प्रत्येक व्यक्ति को चलाती है। मनुष्य की इच्छा का कोई मूल्य ही नहीं है। मनुष्य स्वावलंबी नहीं है, वह कर्ता भी नहीं है, साधन मात्र है।' [15] हम देखते हैं जीवन का चिह्न परिवर्तन है, क्रिया है। जीवित वही वस्तु है जो काम करती है; जो गतिशील है, और मृत वह है जो स्थिर है और जो हिल नहीं सकती। हम मनुष्य को जीवन का ही रूप मानते हैं, क्योंकि वह काम करता है, पत्थर और लकड़ी को हम

जीवन का रूप मानकर उसे हम मृत मानते हैं, क्योंकि उसे हम जहाँ डाल देते हैं वहीं पर पड़ा रहता है। इस प्रकार वर्माजी ने दार्शनिकता, नियति और जीवन का अर्थ और एक दूसरे से संबंध विशद किया है।

नियतिवाद पर वर्माजी का अपना एक अलग ही विश्वास है, अपनी आस्था है, अपना अनुभव है और अपनी धारणा है, जोकि वही जीवन-दर्शन बन गया है। इसी जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति वर्माजी के संपूर्ण साहित्य में हमें देखने को मिलती है। इस उपन्यास में वर्माजी ने यह बताया है कि मनुष्य कुछ और सोचता है, ईश्वर कुछ और, परंतु ईश्वर की इच्छा के सामने मनुष्य कुछ नहीं कर सकता। इसी कारण ही वर्माजी ने अंत में रत्नांबर के माध्यम से यह बताने की कोशिश की है कि, 'यही मनुष्य का जीवन है। जो कुछ मनुष्य करता है वह उसके स्वभाव के अनुकूल होता है, और स्वभाव प्राकृतिक है। मनुष्य अपना स्वामी नहीं है, वह परिस्थितियों का दास है - - - विवश है।' [16] इसी को ही वर्माजी नियतिवाद मानते हैं। नियतिवाद का एक उदाहरण : चित्रलेखा बीजगुप्त से कहती है - 'कुमारगिरि निर्जन का निवासी है और हम दोनों कर्मक्षेत्र के अभिनेता हैं।' [17] इस प्रकार वर्माजी नियतिवाद के पक्षधर नजर आते हैं। बीजगुप्त के माध्यम से वर्माजी नियतिवाद के बारे में अपना मत व्यक्त करते हैं। बीजगुप्त श्वेतांक को समझाते हुए कहता है कि - 'मनुष्य स्वतंत्र विचारवाला प्राणी होते हुए भी परिस्थितियों का दास है और यह परिस्थिति चक्र क्या है, पूर्व जन्म के कर्मों के फल का विधान है' [18]

वर्माजी के उपन्यासों में हमें भोगवाद के दर्शन अधिक होते हैं। जीवन में अनेक समस्याओं, यातनाओं, विडंबनाओं के कारण मानव में निराशा छा जाती है। परंतु व्यावहारिक जीवन में व्यक्ति हमेशा तो निराशा का स्तवन नहीं कर सकता। वर्माजी के उपन्यास 'चित्रलेखा' के पात्र मध्यवर्ग के हैं, जिनमें जीवन की कटुता, अवसाद और क्षणभंगुरता के कारण एक घुटन-सी भर गई है। भोगवाद का सही अर्थ - संगीत, सुरा और सुंदरी के संबंध में ही है। 'चित्रलेखा' उपन्यास में हम देखते हैं कि भोगवादी चित्रण पूरी तरह से सामंत बीजगुप्त और नर्तकी चित्रलेखा के माध्यम से किया गया है। विषय-वस्तु और प्रतिपाद्य की दृष्टि से 'चित्रलेखा' वर्माजी के भोगवादी दर्शन की सशक्त कृति है, क्योंकि उसमें पाप-पुण्य का भेद काल्पनिक रूप में स्वीकार किया है, वास्तविक नहीं। 'बीजगुप्त और चित्रलेखा के जीवन का इष्ट आमोद-प्रमोद है तथा यही उनके जीवन का साधन है और लक्ष्य भी है।' [19] उसी प्रकार चित्रलेखा के बारे में विलासमय वर्णन वर्माजी करते हुए बताते हैं कि - 'चित्रलेखा' का अभीष्ट जीवन बुझानेवाली पिपासा है। [20] इससे भी आगे जाकर इसका वर्णन किया है जैसे कुमारगिरि को देखते ही चित्रलेखा के मन में बीजगुप्त का आकर्षण कम होने लगा और इसका परिणाम वह अंत में अपने को कुमारगिरि के हाथों में सौंप देती है। इसी प्रकार के भोगविलासमय प्रसंग में छलकते हुए मदिरा के पात्र को चित्रलेखा के मुख से लगाते हुए बीजगुप्त ने कहा 'चित्रलेखा। जानती हो, जीवन का सुख क्या है?' चित्रलेखा की अधखुली आँखों में उल्लास था। यौवन की उमंग में सौंदर्य किलोलें कर रहा था, आलिंगनपाश में वासना हँस रही थी। चित्रलेखा ने मदिरा का एक घूँट पिया इसके बाद वह मुस्कराई। एक क्षण के लिए उसके अधरों ने बीजगुप्त के अधरों से मौन भाषा में कुछ बात कही, फिर धीरे से उसने उत्तर दिया - 'मस्ती।' [21] वे दोनों दुख को दूर करने के लिए इसीप्रकार मदिरापान करते हैं। नैसर्गिक वृत्तियों से दूर भागना और उसे दबाना इसमें मनुष्य की दुर्बलता है, और वर्माजी आगे कहते हैं वही व्यक्ति स्वाभाविक जीवन से भागता है, जिसमें परिस्थितियों से संघर्ष करने की उपेक्षा कर वर्माजी ने वर्तमान के उपभोग पर बल दिया है। 'भूत और भविष्य,

ये दोनों ही कल्पना की चीजें हैं, जिनसे हमको प्रयोजन नहीं, वर्तमान हमारे सामने है और वह उल्लास-विलास है, संसार का सारा सुख है, यौवन का सार है।' [22] इससे यह स्पष्ट होता है कि बीजगुप्त की मादकता चित्रलेखा है और चित्रलेखा का उन्माद बीजगुप्त है। वे दोनों अपना जीवन शराब के नशे में यौवन की मादकता और वासना में व्यतीत करनेवाले हैं। चित्रलेखा के ही शब्दों में - 'कुमारगिरि निर्जन का निवासी है और हम दोनों कर्मक्षेत्र के अभिनेता हैं। कुमारगिरि वासनाओं पर विश्वास करते हैं। कुमारगिरि के जीवन का लक्ष्य है कल्पना का शून्य और हम दोनों के जीवन का लक्ष्य है, मस्ती का पागलपन। प्रियतम।' [23] इस प्रकार हम देखते हैं कि ऐहिक जीवन में इंद्रिय-सुख के अतिरिक्त दोनों के लिए सब व्यर्थ है।

'चित्रलेखा' में पाप और पुण्य के प्रश्न को प्रस्तुत किया है। जैसे उपन्यास का प्रारंभ ही सीधे श्वेतांक के पूछे प्रश्न को लेकर होता है - 'और पाप?' [24] मगर इसका उत्तर महाप्रभु रत्नांबर नहीं दे पाते, और वह शिष्यों के सामने अपना अज्ञान स्वीकार कर लेते हैं। रत्नांबर पाप-पुण्य की व्याख्या देकर भी समझाना नहीं चाहते बल्कि वह दोनों शिष्यों को अपने स्वयं के अनुभव द्वारा दो विभिन्न परिस्थितियों में से इसकी व्याख्या उन्हीं से कराना चाहते हैं। इसके बारे में रत्नांबर का मत है कि महत्व के सिर्फ विचार से कुछ फायदा नहीं उसकी जगह अनुभव ही सबसे महत्वपूर्ण है - सिर्फ कोरा ज्ञान नहीं। रत्नांबर का मत है कि निजी अनुभव के आधार पर ही सत्य को जाना जा सकता है। तथा पाप और पुण्य की परीक्षा की जा सकती है। इसीलिए रत्नांबर उनके दोनों शिष्य श्वेतांक और विशालदेव को दो विभिन्न परिस्थितियों में भेजने का निश्चय करते हैं। इसलिए श्वेतांक भोगी बीजगुप्त के पास तथा विशालदेव योगी कुमारगिरि के पास भेजा जाता है। योगी कुमारगिरि का भी अनुभव के बारे में विश्वास है कि 'ज्ञान तर्क की चीज नहीं, अनुभव की चीज है जिसे मनुष्य बिना विश्वास के नहीं प्राप्त कर सकता।' [25] इससे यह स्पष्ट होता है कि उसकी दृष्टि में पाप क्या है यह अधिकतर अनुभव से ही जाना जा सकता है। इस प्रकार लेखक वर्माजी अनुराग विराग का कर्मस्थल समाज को मानकर स्पष्ट करते हैं कि पाप और पुण्य के अस्तित्व से परिचित होने के लिए समाज में रहकर अनुभव प्राप्त करना आवश्यक है। रत्नांबर के दोनों शिष्यों को भिन्न परिस्थितियों में भेजने का कारण ही यह हो सकता है कि मनुष्य स्वयं जिस प्रकार की परिस्थिति में रहेगा उनसे प्राप्त अनुभवों के आधार पर स्वविवेक से लिया गया निर्णय ही पाप और पुण्य का निर्धारण करेगा, इसका प्रमाण यह है कि उपन्यास के अंत में दोनों शिष्य अलग-अलग परिस्थिति से अनुभव प्राप्त करके आते हैं और अपने मतानुसार पाप-पुण्य की भिन्न-भिन्न व्याख्या करते हुए नजर आते हैं। दोनों में दृष्टिकोण की विषमता नजर आती है। वर्माजी ने रत्नांबर के माध्यम से अंत में अपने विचार व्यक्त किए हैं। 'पाप पुण्य की सर्वस्वीकृत परिभाषा देना इसलिए असंभव है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपनी मनः प्रवृत्ति एवं परिस्थिति द्वारा बाध्य होकर कार्य करता है, जिसके लिए वह स्वयं उत्तरदायी नहीं, तथा अपने-अपने सुख की अवधारणा भिन्न-भिन्न होने के कारण भी मनुष्य के कर्म को पाप अथवा पुण्य की संज्ञा से अभिहित नहीं किया जा सकता।' [26]

इस संसार में जीवन के मार्ग अनेक हैं। जीवन एक हलचल है, तब जीवन को किस तरह बिताना चाहिए? इसके बारे में प्रश्न खड़े रहते हैं। जैसे की आदिकाल से लेकर आज तक इसके बारे में दार्शनिकों ने अनेक मार्ग बनाए मगर उनमें कौन श्रेष्ठ है? और इनमें कौन इन सबसे अधिक व्यावहारिक है? [27] इसी बात को वर्माजी

ने 'चित्रलेखा' उपन्यास में अलग-अलग पात्रों की निर्मिति करके उनके अपने मतानुसार उनके दैनिक जीवन में समावेश करके तथ्यों को अधिक ही बोधगम्य और व्यावहारिक बना दिया है। जैसे की इस उपन्यास में प्रमुख तीन पात्रों की निर्मिति ही दार्शनिक दृष्टिकोण से की है - चित्रलेखा, बीजगुप्त और कुमारगिरि। इन्हीं पात्रों द्वारा जीवन के विभिन्न मार्गों का प्रतिपादन वर्माजी ने हमारे सामने किया है।

वर्माजी ने तीन पात्रों के माध्यम से - याने चित्रलेखा प्रवृत्तिमार्ग पर जीवन यापन करती है, दूसरा पात्र कुमारगिरि वह निवृत्ति मार्ग पर चलने की कोशिश करता है मगर अंत में असफल रहता है और तीसरा पात्र जो सच्चा प्रेमी है, बीजगुप्त वह वास्तविक योग मार्ग पर चलता है। इस प्रकार ये तीनों पात्र दार्शनिक हैं, मगर इन तीनों के जीवन के मार्ग एक दूसरे से भिन्न हैं। उपन्यास में देखते हैं तीनों के मार्गों का एक दूसरे पर प्रभाव पड़ता है। पहला पात्र है चित्रलेखा जो प्रवृत्ति मार्ग पर चलती है - लेखक ने उपन्यास में प्रवृत्ति मार्ग और निवृत्ति मार्ग का भयानक संघर्ष दिखाकर अंत में दोनों का ही पतन दिखाया है। चित्रलेखा प्रवृत्ति-मार्ग का प्रतिनिधित्व करती है। यह प्रवृत्तिमार्ग मनुष्य के स्वाभाविक प्रवृत्ति से निर्माण हुआ है। जीवन की निर्मिति आनंद के लिए हो गई है। और इसी आनंद का आस्वाद लेने के लिए ईश्वर ने मनुष्य को नाक, कान, आँख और मुँह दिए हैं। इस उपन्यास में चित्रलेखा को भी प्रवृत्ति में आस्था रखते हुए दिखाया गया है। वह जीवन को अविकल कर्म मानती है तथा संसार की बाधाओं से मुख मोड़ने वाले को 'कायर' समझती है। वह तपस्या को 'जीवन की भूल' तथा 'आत्मा का हनन' कहकर योगी को चेतावनी देती है। [28] वर्माजी स्वयं अपना मत बीजगुप्त के सहारे स्पष्ट करते हैं। चित्रलेखा एवं कुमारगिरि के वादविवाद को जीवन एवं मुक्ति की होड़ कहकर अपने प्रवृत्ति-विषयक दृष्टिकोण के एक पहलु को व्यक्त कर दिया है तथा अप्रत्यक्ष रूप से प्रवृत्ति एवं निवृत्ति विषयक उस प्रश्न का उत्तर दे दिया है जिसे बीजगुप्त के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है - 'बीजगुप्त हँस पड़ा .. .. संसार में इस समय दो मत हैं। एक जीवन को हलचलमय करता है। दूसरा जीवन को शांति का केंद्र बनाना चाहता है। दोनों ओर के तर्क यथेष्ट सुंदर हैं। यह निर्णय करना कि कौन सत्य है, बड़ा कठिन कार्य है।' [29]

भारतीय चिंतन-पद्धति में निवृत्ति और प्रवृत्ति दर्शन की दो धाराएँ मिलती हैं। जैसे निवृत्ति के अंतर्गत तपस्या, साधना और संन्यास पर बल दिया जाता है, तो प्रवृत्ति में कर्म पर। प्रवृत्ति मार्ग के दो रूप हैं एक गीता का कर्मवाद और दूसरा चार्वाक का भोगवाद। [30] वर्माजी की प्रवृत्ति में आस्था का कारण संभवतः उनका नियतिवादी जीवन दर्शन है। प्रवृत्ति में जो चार्वाक का भोगवाद है उसमें सत-असत, कल्याणकारी-अकल्याणकारी का कोई भेद नहीं, केवल जीवन में भौतिक सुखों का भरपूर आनंद उठाने पर ही बल दिया गया है। परंतु वर्माजी आनंद को और उसके साथ सुखों को महत्व देते समय अपनी भावनाओं का उदात्तीकरण भी करते हुए दिखाते हैं। [31] जीवन के प्रवृत्तिमार्ग का 'चित्रलेखा' उपन्यास में चित्रलेखा ही यथार्थ उदाहरण है। जिसे हम उपन्यास के प्रारंभ में ही देखते हैं। उपन्यास के प्रारंभ में ही लेखक ने बीजगुप्त और चित्रलेखा के द्वारा इस प्रवृत्ति मार्ग का दर्शन किया है। इन दोनों के संवादों से प्रवृत्ति मार्ग का बोध हो जाता है - 'चित्रलेखा, जानती हो जीवन का सुख क्या है?' 'मस्ती' [32] इसका अर्थ वर्माजी ने इसप्रकार लगाया है कि मस्ती यानी भूल जाना और भूल यह जाना कि आगे क्या होने वाला है और पीछे क्या हो चुका

है। भूल इसलिए जाना कि भूत और भविष्य की कल्पना जीवन की मादकता को नष्ट न कर दे। प्रवृत्तिवादी केवल वर्तमान के बारे में सोचते हैं भूत या भविष्य के बारे में चिंता नहीं करते। वह मानते हैं अभी वर्तमान तो चैन से कटता है कल की चिंता क्यों करें। इसका मतलब प्रवृत्तिवादी आज को महत्व देते हैं। आज की बात वे सोचते हैं; कल्पना के बारे में उन्हें डर लगता है। इसका उदाहरण चित्रलेखा है। वह भी वर्तमान की मस्ती में भूतकालीन जीवन की दुखद स्मृतियों को भूल जाना चाहती है। 'जीवन का अंत क्या होगा?' इस प्रश्न की विभीषिका से भयभीत होकर अपने को मदिरा के 'मदपान' में डुबोकर सब भूलना चाहती है, और वह जीवन की इसी निष्ठुरता का सामना नहीं कर पाती है, और वह इस प्रकार मदिरापान में अपने को पूरी तरह डुबोकर अतीत को छिपाकर भूला देना चाहती है।

चित्रलेखा का चित्रांकन एक नर्तकी के रूप में किया है मगर वह चंचल नारी के रूप में सामने आई है। उसमें एक प्रमुख विशेषता है, वह है अस्थिरता। उसके पूरे चरित्र में हलचल है। वह बीजगुप्त के समान एक से ही सच्चा प्रेम नहीं करती। उसकी भावनाओं में भी अनेक बार बदलाव आता है। इसीसे ही उसकी अस्थिरता, विशेषता सामने आती है। उसका व्यक्तित्व प्रभावशाली दिखाया है, किंतु उसमें निर्बलता है। वह यह कि उसके मतानुसार विचारों में स्थायित्व नहीं रहता। उसका स्वभाव चंचल होने के कारण वह निश्चित रूप में यह भी नहीं कह सकती कि उसका चुना हुआ मार्ग सही है या नहीं। इसका सही-सही दर्शन देखने को मिलता है जैसे - वह विधवा होकर भी कृष्णादित्य से प्रेम करती है वह मर जाने के बाद नर्तकी बनने के बाद वह सामंत बीजगुप्त से प्रेम करती है, श्वेतांक पर भी आकर्षित होती है; और अंत में योगी कुमारगिरि की साधना भंग करती है। इन सभी से प्रेम करते समय उसे एक ही अनुभव हुआ कि उसका पहला निर्णय गलत था। इसी करणवश वह किसी के प्रेम में स्थिर नहीं रहती और इसीं कारण ही कुमारगिरि की वासना का शिकार होती है। वह कुमारगिरि की योग-साधना की ओर आकर्षित होती है। लेकिन उसका यह निर्णय ज्यादा समय स्थिर नहीं रहता, और उसका विश्वास भी नहीं रहता।

उपन्यास में जगह-जगह विद्‌वानों में तार्किक वाद-विवाद होते रहते हैं। चंद्रगुप्त के दरबार में सम्राट चंद्रगुप्त, महामंत्री चाणक्य, योगी कुमारगिरि, सामंत बीजगुप्त तथा अन्य अनेक लोग उपस्थित थे। राजसभा में नीति, धर्म और ईश्वर जैसे गंभीर विषय पर चर्चा आरंभ हुई। महाराज चंद्रगुप्त ने महामंत्री चाणक्य से पूछा - 'नीति धर्म के अंतर्गत है या नहीं?' चाणक्य ने उत्तर दिया - 'धर्म ने नीति शास्त्र को जन्म नहीं दिया बल्कि नीति शास्त्र ने धर्म को जन्म दिया है।' तब कुमारगिरि बोल उठे - 'धर्म ईश्वर का सांसारिक रूप है। धर्म मनुष्य को ईश्वर से मिलाने का साधन है। धर्म की अवहेलना ईश्वर की अवहेलना है, सत्य से दूर हटना है। सत्य एक है, धर्म उसीका दूसरा नाम है। यदि नीति शास्त्र धर्म के सिद्‌धांतों के प्रतिकूल मत व्यक्त करता है, तो वह नीति शास्त्र नहीं, वरन् अनीतिशास्त्र है।' चाणक्य ने कुमारगिरि की ओर उपेक्षा से देखते हुए पूछा - 'जानते हो, धर्म को किसने जन्म दिया?' योगी ने कहा - 'ईश्वर ने, मनुष्य की अंतरात्मा द्‌वारा।' चाणक्य ने पूछा - 'और ईश्वर को?' कुमारगिरि ने कहा - 'ईश्वर अनादि है।' [33] चाणक्य ने उसपर कहा कि ईश्वर को किसीने नहीं देखा। ईश्वर कल्पनाजनित है। अपनी आवश्यकता पूरी करने के लिए समाज ने उस ईश्वर को जन्म दिया है। अंतरात्मा की बात भी भ्रामक है। अंतरात्मा ईश्वर द्‌वारा निर्मित न होकर समाज द्‌वारा निर्मित है।

कुमारगिरि आँखें मूँदे ध्यानमग्न हो गए थे। पाटलिपुत्र की सर्वसुंदर नर्तकी चित्रलेखा ने नृत्य आरंभ किया। तभी योगी ने अपनी आँखें खोली और खड़े होकर कहा - 'महामंत्री चाणक्य, मैं ईश्वर को जानता हूँ और तुम्हें तथा सारी सभा को भी यहीं दिखा सकता हूँ।' चित्रलेखा को क्रोध आया कि उसे नृत्य बंद करना पड़ा। सभा के मध्य में खड़े होकर योगी ने आत्मशक्ति के बल पर सारी सभा को दिखा दिया कि यज्ञवेदी से एक अग्निशिखा निकलकर आकाश की ओर बढ़ती गई। उसका आकार और प्रकाश भी बढ़ता गया। लोगों की आँखें उस तीव्र प्रकाश को सहन न कर सकीं। उसमें प्रकाश था, ताप न था। कुमारगिरि ने कहा - 'यह सत्य है।' उसी समय चाणक्य ने कहा - 'योगी तुम झूठ बोलते हो। मुझे कुछ दिखाई नहीं देता।' कुमारगिरि ने कहा जिसे सारी सभा ने देखा है उसे तुम कहते हो कि मैंने नहीं देखा, तुम झूठ बोलते हो। सभी लोग चिल्लाकर कहने लगे मंत्री झूठ बोलते हैं। चाणक्य ने अपनी हार स्वीकार की और चुप बैठ गए। परंतु तुरंत चित्रलेखा ने पूछा - 'योगी शपथपूर्वक बताओ कि क्या तुमने सत्य और ईश्वर के उस स्वरूप को देखा है?' योगी ने कहा नहीं, साथ ही योगी ने स्वीकार कर लिया कि उन्होंने आत्मशक्ति के बल पर कल्पना द्वारा निर्मित सत्य तथा ईश्वर का रूप दिखलाया है।

शुरू में चाणक्य योगी से हार गए थे। पर अब योगी कुमारगिरि पर चित्रलेखा ने विजय पा ली थी। महाराज के संकेत करने पर चाणक्य ने विजय मुकुट को चित्रलेखा के मस्तक पर रखते हुए कहा - 'चित्रलेखा आज की विजय तुम्हारी रही। तुमने सत्य के उस रूप को जिसका आत्मशक्ति के दुरुपयोग द्वारा भ्रम के आवरण में छिपाने का प्रयत्न योगी कुमारगिरि ने किया था, हमको दिखला दिया।' उन्होंने कुमारगिरि से कहा - 'योगी, आत्मशक्ति के बल पर तुमने जो अनुचित कर्म किया है, उसका तुम्हें दंड मिलना चाहिए। तुम्हें दंड देने का अधिकार चित्रलेखा को होगा।' कुमारगिरि चिढ़ गया - मुझे कोई परास्त नहीं कर सकता - मुझे कोई दंड नहीं दे सकता। चित्रलेखा मुस्कराती हुई योगी की ओर बढ़ी और उसने विजय-मुकुट अपने मस्तक से उतारकर योगी कुमारगिरि के मस्तक पर रख दिया। उसके बाद चित्रलेखा विद्युत गति से नृत्य करने लगी। इस दृश्य से उपन्यास की प्रमुख पात्र चित्रलेखा की दार्शनिकता स्पष्ट दिखाई देती है। उसका ज्ञान दिखाई देता है।

प्रवृत्ति मार्गी की और एक विशेषता है, वह है सिद्धांतों का विकृतिकरण। इसका अर्थ है अपनी प्रवृत्ति की संतुष्टि के विचार से प्रत्येक सिद्धांत को अपने अनुरूप गढ़ लेना। इसका अच्छा उदाहरण उस जगह मिलता है जहाँ चित्रलेखा अपनी प्रवृत्तियों के वश में पूरी तरह होकर इस निर्बलता को वह प्रेम का आत्मिक और पारलौकिक संबंध मानती हुई कहती है - 'सुनो, मैं कुमारगिरि से प्रेम करने लग गई हूँ। मुझे ऐसा अनुभव होता है मानो मेरा और कुमारगिरि का युग-युगांतर का संबंध है। आज सभा में . . . प्रत्येक उससे प्रभावित था पर मैं नहीं और यह क्यों? यह केवल इसलिए कि कुमारगिरि को मैं जानती हूँ और मुझको कुमारगिरि। हम दोनों जन्म-जन्मांतरों से साथ-साथ रहे हैं।' [34]

वर्माजी चित्रलेखा के माध्यम से प्रवृत्तिवादी की आत्मवंचना का चित्रण करते हैं। चित्रलेखा की वासना उसके वश में नहीं है, परंतु वह पूरे उपन्यास में अपनी निर्बलता पर दर्शन का रंग चढ़ाती है और उसे उज्ज्वल रूप में दिखाने की कोशिश करती रहती है। इसी कारण तो एक के साथ ही सच्चा प्रेम नहीं कर सकती। उसकी वासना में निर्बलता, चंचलता है। वह नर्तकी होकर भी तार्किक लोगों के बीच तार्किक विवाद, चर्चा करती है।

उसी प्रकार वह गलत तर्क प्रणाली का सहारा लेकर वह चुप नहीं बैठती, बल्कि उससे सच्चा प्रेम करनेवाले सामंत बीजगुप्त को भी धोखा देने का प्रयत्न करती है। इसी कारण जिसे वह पति मानती है, और जिसने उसे पत्नी जैसा स्थान दिया है उसीसे कुछ रहस्य छिपाती है। कुमारगिरि की तरफ आकर्षित होकर भी इसे बीजगुप्त से छिपाने की कोशिश करती है। यह रहस्य वह श्वेतांक के सामने खोल देती है। वह कुमारगिरि की तरफ आकर्षित होती है, उससे प्रेम करने लगती है, इसी कारणवश ही वह बीजगुप्त को यशोधरा से विवाह करने की सलाह देती है। इसमें चित्रलेखा का स्वार्थ छिपा हुआ दिखाई देता है। यह सलाह देने के पीछे उसका एक ही उद्देश्य रहता है, वह है बीजगुप्त से छुटकारा पाकर वह हमेशा के लिए योगी कुमारगिरि के कुटि में रहना चाहती है। इस प्रकार हम यह देखते हैं कि चित्रलेखा पूरी तरह प्रवृत्ति के वश में हो चुकी है। इस प्रकार प्रवृत्ति के वश में पूरी तरह हो जाने पर उसका पूर्ण पतन हो जाता है, और उसका विवेक पूरी तरह नष्ट हो जाता है। इस प्रकार चित्रलेखा प्रवृत्ति मार्ग में फँस जाती है। यही मौका पाकर कुमारगिरि एक झूठी चाल चलता है और इसमें चित्रलेखा पूरी तरह आ जाती है। कुमारगिरि भी अपने अपमान का बदला चित्रलेखा से लेना चाहता है। इसलिए वह मौका देख रहा था। इसलिए वह चित्रलेखा को बीजगुप्त के बारे में एक झूठी खबर सुनाता है कि बीजगुप्त ने यशोधरा से विवाह कर लिया है। यह सुनते ही उसको यह सब सत्य नहीं लगता। उसका शरीर काँपने लगता है। मगर कुमारगिरि उससे कहता है झूठ लगता है तो तुम स्वयं जाकर देख आओ। इस पर चित्रलेखा को लगता है सब समाप्त हो गया चित्रलेखा का हिताहित ज्ञान जाता रहता है, और वह कुमारगिरि की वासना का साधन बन जाती है।

इस प्रकार वर्माजी ने चित्रलेखा के प्रवृत्ति मार्ग भरे जीवन से प्रवृत्तिमार्गी का अनौचित्य सिद्ध किया है। चित्रित किया है। इस प्रकार चित्रलेखा के माध्यम से जीवन के एक मार्ग (प्रवृत्ति) का चित्रण किया गया है।

'चित्रलेखा' उपन्यास में चित्रलेखा को प्रवृत्तिमार्गी बताया है उसी प्रकार इसमें दूसरा पात्र है योगी कुमारगिरि, जो निवृत्ति मार्ग का पथिक है। कुमारगिरि को लोग ज्ञानी-योगी समझते हैं। लोग मानते हैं कि उसने सांसारिक आकर्षणों एवं अपनी इंद्रियों पर पूर्ण विजय पाई है। कुमारगिरि उपन्यास के प्रारंभ में इंद्रियजित, प्रतापी, आत्मिक बल और अलौकिक शक्ति से युक्त, परम तेजस्वी योगी के रूप में अवतारित होता है। योगी निवृत्ति मार्गी इसी स्थिति को 'मुक्ति' मानता है। उसने वासनाओं पर और आकर्षणों पर विजय पा ली है, मगर क्या यह विजय उसकी सत्य विजय है? किंतु उपन्यास की गति के साथ-साथ इस पात्र की दुर्गति का सिलसिला भी जारी रहता है। उपन्यास की शुरू में योगी का चरित्र श्रद्धा पात्र है। मगर धीरे-धीरे उसमें परिवर्तन होकर वह अंत में घृणा-पात्र बन जाता है। इससे कुमारगिरि के जीवन को आसानी से समझा जा सकता है। चित्रलेखा जब कुमारगिरि की कुटि में दीक्षा लेने के लिए जाती है तो उसके रूप ज्ञान और वाक्पटुता का ऐसा प्रभाव कुमारगिरि पर हो जाता है कि वह एक क्षण के लिए सही योग साधना भूल जाता है। इसी क्षण में उसे अपने ज्ञान साधना पर गर्व की बजाय अविश्वास होने लगता है। इतना उसपर प्रभाव पड़ता है। चित्रलेखा भी इसी क्षण का फायदा उठाते हुए नर्तकी, सुंदरी, कामपुत्तलिका, तर्कशीला, विदुषी रूपों में उसके मन-मस्तिष्क को उद्वेलित कर देती है। निवृत्तिमार्ग के अनुसार जीवन क्या है? देखिए - मधुपाल ने पूछा - 'देव! संसार की वास्तविक गति क्या है?' 'बाह्य दृष्टि से परिवर्तन और आंतरिक दृष्टि से शून्य और परिवर्तन और इनके विचित्र संयोग पर तुम्हें आश्चर्य होगा - यह दोनों किस प्रकार एक हो सकते हैं, यह प्रश्न स्वाभाविक होगा पर वही स्थिति जहाँ मनुष्य

परिवर्तन और शून्य के भेद-भाव से ऊपर उठ जाता है ज्ञान की अंतिम सीढ़ी है। संसार क्या है? शून्य है। और परिवर्तन उस शून्य की चाल है। परिवर्तन कल्पना है और कल्पना स्वयं ही शून्य है। समझे?' [35] निवृत्ति मार्गी जीवन के प्रति दृष्टिकोण का सार इन पंक्तियों में स्पष्ट होता है। प्रवृत्ति मार्गी और निवृत्ति मार्गी में यही अंतर है कि प्रवृत्तिमार्गी जीवन को इंद्रियों की अनुभूति के बाहर नहीं समझता। सिर्फ वह जो कुछ अपनी आँखों से देखता है, सुनता है और अनुभव करता है, वही संसार है। क्योंकि वह यह सब इंद्रियानुभूति पर निर्भर करता है। इसलिए अनुभूति की मात्रा घटने-बढ़ने पर 'परिवर्तन' को ही सत्य समझ लेना उसके लिए स्वाभाविक ही है। इसके विपरीत निवृत्तिमार्गी की स्थिति होती है, निवृत्ति मार्गी सत्य को इंद्रियातीत मानता है। उसके अनुसार वस्तुओं में होने वाला बाह्य परिवर्तन उसके असली स्थायित्व पर जो सत्य है, पर्दा डालते हैं। कुमारगिरि के आश्रम में चित्रलेखा जब दीक्षा लेने के लिए आती है तो उसके रूप, ज्ञान, सुंदरी, नर्तकी, तर्कशीला रूपों में उसके मन-मस्तिष्क को अपनी ओर आकर्षित करती है। पहली बार जब ये दोनों चंद्रगुप्त के दरबार में, राजसभा में मिले तो दोनों उसी समय एक दूसरे से प्रभावित हो गए थे। मगर उसी सभा में चित्रलेखा ने उसका अपमान किया था वह पराजित हो गया था। इसी पराजय के कडुवे घूँट को वह न तो गले से उतार पाता है, न उगल पाता है। जब चित्रलेखा दीक्षा लेने की इच्छा उसके सामने प्रदर्शित करती है, तो वह घबराता है। उसे लगता है न जाने इसको दीक्षा देने में मैं अपने निवृत्ति-मार्ग से गिर न जाऊँ। इस प्रकार उसके मन में भय निर्माण हो जाता है और उसे चित्रलेखा को दीक्षा देने में संकोच निर्माण होता है। कुमारगिरि योगी है, वह निवृत्ति मार्गी होने के कारण वासना उसकी दृष्टि में त्याज्य है। इसी कारण चित्रलेखा को दीक्षा देना उसे गिरना लगता है। इसी डर से वे चित्रलेखा से कहते हैं - 'तुम्हें दीक्षा देने के अर्थ होते हैं, गिरना, नीचे गिरना। कहाँ? नीचे-ही-नीचे जहाँ अंत ही नहीं है। मैं तुम्हें जानता हूँ और मैं अपने को भी जानता हूँ। तुम्हें ऊपर उठाना कठिन है, स्वयं नीचे गिरना सरल है' [36] इतना कहने के बाद कुमारगिरि उससे और प्रश्न पूछते हैं, तुम यहाँ क्यों आई हो? क्या वास्तव में तुम ज्ञान प्राप्त करना चाहती हो? क्या वास्तव में तुम भोग-विलास को तिलांजलि देने आई हो? क्या यह संभव है? कुमारगिरि हँसते हैं। चित्रलेखा आने का सच्चा कारण बताती है कि मैं तुमसे प्रेम करने के लिए आई हूँ। संयम और नियम से इस वासना रूपी पाप जा सकता, ऐसा उसे विश्वास ही नहीं लगता। इसी कारण ही वह दीक्षा देने से कतराता है। इस प्रकार स्थिति होकर भी वह चित्रलेखा की तर्कपूर्ण बातों पर गर्व के कारण झूठा रोब दिखाता है और वह वासनाओं पर विजय पा लेने का दावा भी करता है - 'अच्छा देवि। तो फिर तुम्हें दीक्षा दूँगा। भगवान की इच्छा है कि मैं संसारस्थित वासनाओं से युद्ध करूँ - तो फिर ऐसा ही हो।' [37] इस प्रसंग से हम यह जान लेते हैं कि कुमारगिरि के अंदर झूठा अहंकार और गर्व छिपा हुआ है। इसी अहंकार के कारण वह विशाल देव से कहता है - 'मैं तुम्हें पुण्य का रूप दिखा दूँगा और पुण्य को जानकर तुम पाप का पता लगा सकोगे।' [38] वासना पर वह विजय पा सकता है तो वह शुरू में चित्रलेखा को दीक्षा देने में कतराता क्यों है? लेकिन चित्रलेखा अपनी तर्कपूर्ण बातों से गंभीर हो जाती है वह कहती है - 'शून्य। योगी, तुम्हारे उस शून्य पर विश्वास ही कौन करता है? जो कुछ सामने हैं, यही सत्य है और नित्य है। शून्य कल्पना की वस्तु है। शून्य की महत्ता की दुहाई देनेवाले योगी क्या तुम अपने और मेरे ममत्व में भेद देखते हो? यदि हाँ, तो तुम शून्य पर विश्वास नहीं करते, और यदि नहीं, तो तुम्हारा ज्ञान और अंधकार, सुख और दुःख, स्त्री और पुरुष तथा पाप और पुण्य का भेद-भाव मिथ्या है। मनुष्य को जन्म देते हुए ईश्वर ने उसका कार्य-क्षेत्र निर्धारित कर दिया। उसने

मनुष्य को इसलिए जन्म दिया है कि वह संसार में आकर कर्म करे, कायर की भाँति संसार की बाधाओं से मुख न मोड़ ले। और सुख। सुख तृप्ति का दूसरा नाम है। तृप्ति वहीं संभव है, जहाँ इच्छा होगी, वासना होगी' [39] निवृत्तिमार्गी कुमारगिरि में कमजोरी है। इसी कारण चित्रलेखा की कुटी में आने से उसकी समीपता से वह घबरा जाता है। इसीलिए वह चित्रलेखा को शुरू में दीक्षा देने की हिम्मत नहीं कर पाता। झूठे घमंड के कारण अंत में तैयार हो जाता है। इस प्रकार के निवृत्तिवादियों को पलायनवादी भी कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं है। निवृत्ति मार्गी अपने मार्ग की बाधा के रूप में हमारी इच्छाएँ और वासना को ही मानते हैं। इसीके कारण वश मनुष्य सत्य को भूल जाता है। परंतु इन इच्छा और वासना में इतनी शक्ति होती है, तथा उसमें एक अलग ही आकर्षण रहता है, कि मनुष्य न जाने कब और कैसे उसके मोहजाल में फँस जाता है, उसे भी नहीं समझ में आता। यह बात कुमारगिरि के बारे में सच हो गई है। वह भी न चाहते हुए भी चित्रलेखा के अप्रतिम सौंदर्य से आकर्षित हो जाता है और फँस जाता ही है। इसीलिए कुमारगिरि कहते हैं - 'इच्छाओं का दबाना उचित नहीं हैं, इन्हें पैदा ही न होने दो। यदि एक बार इच्छा उत्पन्न हो गई तो फिर प्रबल रूप धारण कर लेगी। इसलिए तुम्हारा कर्तव्य होगा कि इच्छाओं को सदा के लिए मार डालो।' इच्छाओं को उत्पन्न न करा देना यह सिद्धांतों के प्रतिकूल है। इच्छा रोकने से रुक नहीं सकती। भला हम सरिता को बाँध सकते हैं क्या? अगर बाँधते भी हैं तो उसका जल घुमड़-घुमड़कर बाँध को तोडने की कोशिश करेगा। इसी प्रकार इच्छाओं का रहता है। इच्छाओं को उत्पन्न होने से रोक नहीं सकते।

जीवन भर जो इस प्रेम और सुखोपयोगों से दूर रहा है, अगर यही एक बार उसकी ओर आकृष्ट हो जाता है तो वह वासनाओं के समुद्र में डूबकर मर ही जाता है। बिल्कुल इसी प्रकार की स्थिति कुमारगिरि की हो गई है। चित्रलेखा उसकी कुटी में आने के बाद ही कुमारगिरि के पतन का मार्ग शुरू हो जाता है। झूठ, दंभ, पाखंड, काम, विद्वेष, छल जैसी दुर्बलताओं के दर्शन उसके चरित्र में चित्रलेखा के आगमन से दिखाई पड़ते हैं। [40] इसका प्रमाण यह है कि वह जब भी चित्रलेखा या अन्य किसी से भी बीज़गुप्त के बारे में चर्चा करता है, तो उसके कथनों में ईर्ष्या और कुटिलता की गंध आती है। यही उसके पतन का कारण भी बन जाता है। मृत्युंजय के घर पर यशोधरा के बीजगुप्त के साथ विवाह का समर्थन करने के पीछे उसकी स्वार्थसनी दुर्भावना कार्यरत है। [41] उसके इस प्रकार के आचरण में उसका बीभत्स रूप सामने आता है। इसी रूप के कारण ही आत्मशक्ति के सहोर सत्य का साक्षात्कार कराने की क्षमता प्रदर्शित करनेवाला यह योगी असत्य के सहारे चित्रलेखा के शरीर को अपनी वासना का शिकार बना लेता है। [42] इसी कुमारगिरि को चित्रलेखा ने जब पहली बार देखा तो उसे लगा कि इससे मेरा जन्म-जन्मांतर का संबंध है, रात के बाद सुबह उठकर जाते समय योगी का सोता चेहरा उसे भयानक और घृणोत्पादक लगने लगा था। [43] निवृत्ति मार्ग का यही सच्चा रूप है। असत्य का भंडाफोड होने पर चित्रलेखा उससे कहती है - 'तुमने मुझे धोखा दिया। वासना के कीड़े। तुम मुझसे झूठ बोले। तुम्हारी तपस्या विफल हो जाएगी और तुम्हें युगों-युगों नरक में जलना पड़ेगा। मैं जाती हूँ - अब तुम मुझे रोक न सकोगे।' [44] यहाँ चित्रलेखा के द्वारा परिस्थितियों ने उसके अभिमान को तोड़ दिया है, किंतु उसमें इतनी उदारता ही कहाँ है कि वह अपनी पराजय को स्वीकार कर ले और साधना के अस्वाभाविक मार्ग का परित्याग करके अपने अतिरिक्त दूसरों के लिए जीना सीख ले। इस प्रकार वर्माजी ने दार्शनिकता का वर्णन करते-करते निवृत्तिमार्गी कुमारगिरि का चरित्रांकन किया है।

जीवन एक हलचल है, गतिमान है, इसी कारण इसके अनेक मार्ग हैं। इन मार्गों में भारतीय चिंतन पद्धति में निवृत्ति और प्रवृत्ति-दर्शन की दो धाराएँ मिलती हैं। इसी प्रकार दो धाराएँ हैं, इन्हीं दो धाराओं का प्रतिनिधित्व इस उपन्यास के दो पात्र करते हुए दिखाई देते हैं। जैसे-चित्रलेखा जो नर्तकी है प्रमुख पात्रों में से एक है। वह प्रवृत्ति मार्ग का प्रतिनिधित्व करती है, और दूसरा प्रमुख पात्रों में से है योगी कुमारगिरि। यह निवृत्ति मार्ग का प्रतिनिधित्व करता है। मगर ये कुमारगिरि और चित्रलेखा दोनों ही अहंभाव से भरे हुए ममत्व के दास है और दोनों ही ममत्व की तुष्टि पर विश्वास करते हैं। पर दोनों के साधन मात्र भिन्न हैं। इनमें से एक ने साधना को साधन बनाया है तो दूसरे ने आत्मविश्वास को। परंतु जो कुछ आज हुआ है उससे दोनों ही व्यक्ति अपने-अपने साधन से विरत हो गए। [45] यहाँ पर ये दोनों पात्र अपनी-अपनी जगह सामर्थ्यवान है। मगर उन्हें इस पर गर्व की भावना है। वह अनेक बार गर्व से पेश आते हैं। चित्रलेखा को अपनी तार्किक शक्ति पर गर्व है। वह अपनी शक्ति के सामने कुछ नहीं समझती। इसका प्रमाण यह है कि जब बीजगुप्त कुमारगिरि की आकर्षण शक्ति का भय चित्रलेखा को दिखाता है, तो वह कहती है - 'हम दोनों वासनाओं पर विश्वास करते हैं। कुमारगिरि के जीवन का लक्ष्य है कल्पना का शून्य और हम दोनों के जीवन का लक्ष्य है, मस्ती का पागलपन। प्रियतम। संसार का कोई भी व्यक्ति हम दोनों के बीच में नहीं आ सकता।' [46] चित्रलेखा को कुमारगिरि के बारे में सब मालूम होते हुए भी फिर वह अंत में स्वयं डूबती है और उसे भी डुबाती है, और वहाँ पर दोनों का पतन हो जाता है। कुमारगिरि को भी चित्रलेखा की तरह अपनी योग साधना पर गर्व है। उसे लगता है कि वह इंद्रियजित है। वासना को वह पाप, त्याज्य मानता है। इसी झूठे अहंकार के कारण ही जब विशालदेव उससे दीक्षा लेने के लिए जाता है और पाप-पुण्य की छानबीन करना चाहता है तब कुमारगिरि विशालदेव से कहते हैं - 'मेरे साथ रहकर तुम्हें पाप का पता न चलेगा। मेरा क्षेत्र है संयम और नियम - और संयम और नियम से पाप दूर होता है। फिर भी आचार्य का अनुरोध है कि मैं तुम्हें अपना शिष्य बनाऊँ। शिष्य बनाने के पहले तुम और आचार्य पर यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि मैं तुम्हें पुण्य का रूप दिखला दूँगा, और पुण्य को जानकर तुम पाप का पता लगा सकोगे।' [47] लेकिन यह योगी यह अहंकार मानता है कि उसने पूरी तरह वासना पर विजय पा ली, मगर उसकी यह धारणा गलत थी। इन दो पात्रों के जीवन दर्शन का अगर अध्ययन करते हैं, तो यह सामने आता है कि साधारण मनुष्य बिल्कुल नहीं समझता कि सच्चा योग क्या है और जीवन का सच्चा मार्ग कहाँ पर है। इस उपन्यास में चित्रलेखा और कुमारगिरि का अपनाया मार्ग उन्होंने अपने गलत सिद्धांत और गलत तर्क प्रणाली पर अपनाया हुआ था। इसीलिए वह अंत में अपने मार्ग में असफल रहते हैं और उन दोनों का पतन हो जाता है।

उपन्यास के शुरू में हम देखते हैं कि यह तपस्वी योगी कुमारगिरि किस प्रकार चित्रलेखा को दीक्षा देने में विरोध दिखाता है। मगर वहीं पर उसके प्रति आकर्षण पैदा होता है और अपनी साधना पर गर्व होने के कारण वह उसे दीक्षा देने के लिए तैयार होता है। शुरू में जो योगी किसी स्त्री की छाया तक अपनी कुटी में नहीं देखना चाहता, वहीं योगी चित्रलेखा से रागात्मक संबंध स्थापित करते हुए कहता है - 'देवि चित्रलेखा, मैंने एक नई बात सोची है। विराग मनुष्य के लिए असंभव है; क्योंकि विराग नकारात्मक है। विराग का आधार शून्य है - कुछ नहीं है। ऐसी अवस्था में जब कोई कहता है कि वह विरागी है, गलत कहता है; क्योंकि उस समय वह यह कहना चाहता है कि उसका संसार के प्रति विराग है। पर साथ ही किसी के प्रति उसका अनुराग अवश्य है, और उसके अनुराग का केंद्र है ब्रह्म। जीवन का कार्यक्रम है रचनात्मक, विनाशात्मक नहीं, मनुष्य का कर्तव्य है, अनुराग,

विराग नहीं। 'ब्रह्म' से 'अनुराग' के अर्थ होते है ब्रह्म से पृथक वस्तु की उपेक्षा, अथवा उसके प्रति विराग। पर वास्तव में यदि देखा जाए तो विरागी कहलाने वाला व्यक्ति वास्तव में विरागी नहीं, वरन् ईश्वरानुरागी होता है। यह बात अधिक महत्व की नहीं है; दूसरी बात महत्व की है। क्या संसार से विराग और ब्रह्म से अनुराग - ये दोनों एक चीज हैं?' [48] कुमारगिरि इस प्रकार चित्रलेखा के प्रति जो प्रेम व्यक्त कर रहा है वह आत्मिक नहीं, बल्कि वासनायुक्त प्रेम है। यह जिस प्रकार सत्य नहीं लगता उसी प्रकार चित्रलेखा भी कुमारगिरि की तरफ आकर्षित हुई है। उसी आकर्षण को आत्मिक संबंध कहना कहाँ तक उचित है? इसमें सत्यता नहीं दिखाई देती है। कुमारगिरि में एक अद्भूत शक्ति है, इसी बल पर ही उसने सारी राजसभा को चमत्कृत किया था। इसी समय चित्रलेखा भी उसकी ओर आकृष्ट हो जाती है। कुमारगिरि अपनी कल्पना शक्ति के आधार पर ईश्वर और जीवसृष्टि का निर्माण करके, आभास पैदा करके सभी को दिखाता है।

जिनकी आत्मशक्ति निर्बल है, उन्हीं पर इस शक्ति का प्रभाव होता है। जैसे की देखा है - चंद्रगुप्त की राजसभा में सिर्फ चाणक्य और चित्रलेखा को छोड़कर सभी पर इस शक्ति का प्रभाव पड़ा था। इस प्रकार निवृत्ति और प्रवृत्ति मार्ग का प्रतिनिधित्व करनेवाले दो पात्र आपस में भिन्न हैं। कुमारगिरि मानता है कि पुण्य साधना में है। योग और भोग दोनों में सुख की कामना छिपी है, ऐसी स्थिति में यह निर्णय करना कठिन है कि किसे पाप माना जाए। अपने सुख के लिए किया गया कार्य नीति के सामान्य नियमों के विपरीत हो सकता है। अतः मनुष्य के कार्य को पाप-पुण्य की कसौटी पर तोलना अत्यंत कठिन है। लेखक यह कहना चाहता है कि पापी वही नहीं जो भोग करता है, न वह पुण्यात्मा ही है जो स्वाभाविक प्रवृत्तियों का दमन कर योगी होने का दम भरता है। मानवीय वृत्तियों का विरोध अप्राकृतिक मार्ग है। विकृत अहं की परिणति किस भयानक रूप में होती है, यह लेखक ने कुमारगिरि के माध्यम से चित्रित किया है। यदि मनुष्य जीवन के स्वाभाविक उतार-चढ़ाव की प्राकृतिक सीमाओं का उल्लंघन करना चाहे तो उसे असफलता ही प्राप्त होगी। उसकी प्रकृत इच्छाओं को शांत होने का उचित अवसर मिलना चाहिए। जीवन के मुक्त प्रवाह में न बहकर संयम और साधना का जीवन बिताना अस्वाभाविक है। संयम का अवरोध जीवन-प्रवाह को अवरूद्ध कर मनुष्य की नैसर्गिक शक्ति को क्षीण कर देता है। प्रवृत्ति का दमन किया जाए तो वह सदैव विकराल रूप में फूटती है। यहाँ लेखक स्पष्ट करना चाहता है कि वासनाओं के दमन की चेष्टा में, विशृंखलित हो जाना पाप है न कि उनका सहज उपभोग। वासनाओं को जितने वेग से दबाया जाएगा, उतने ही भयंकर रूप में उनका विस्फोट होगा। काम संबंधी विसंगतियाँ इसी कारण होती हैं। बीजगुप्त को सहानुभूति देते हुए वर्माजी भी स्पष्ट करना चाहते हैं कि जीवन को उसकी संपूर्णता में भोगने के पश्चात् योग मार्ग का चुनाव करना सहज हो जाता है। तृप्ति के पश्चात् का वैराग्य स्थायी होता है। बीजगुप्त के माध्यम से वे हमें ऐसे योगी से परिचित कराते हैं जो उस कमल की भाँति है, जो पंक में रहकर भी स्वयं को पंकिल होने से बचाता है। गीता का भी संदेश है कि अनासक्त-कर्म योग से बढ़कर है। सांसारिक भोग-विलास को भोगकर त्याग देना ही बृहत्तर मानवीयता एवं आत्मा के लिए लाभकारी है और यही पुण्य है। 'चित्रलेखा' उपन्यास में कुमारगिरि बिना अनुभव प्राप्त किए पाप-पुण्य को जानने तथा संयम द्वारा पाप से दूर रहने का दम भरता है। उसकी अनुभवहीनता बुराई का सामना होने पर उसे पतन के गर्त में ढकेल देती है। दूसरी ओर बीजगुप्त अनुभव से होकर जाने वाला रास्ता अपनाने के कारण आदर्श पात्र बन जाता है। यहाँ लेखक स्पष्ट करना चाहता है कि समाज की सहज धारा के विरोध में कोई भी मार्ग अपनाना पाप है।

श्वेतांक द्वारा प्रस्तुत पाप-पुण्य विषयक दृष्टिकोण को लेखक की कितनी सहानुभूति प्राप्त हुई है, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। हाँ, कथानक की परिणति और पात्रों का उत्थान देखकर यह स्पष्ट लगता है कि श्वेतांक का यह दृष्टिकोण उचित है कि अपने स्वार्थ के लिए जीना पाप है एवं परहित के लिए किया गया त्याग पुण्य है। प्रथम दृष्टि में ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक भोगी बीजगुप्त का उन्नयन दिखाकर श्वेतांक के मत को ही प्रतिपादित करना चाहता है किंतु ऐसा है नहीं। यह सच है कि बीजगुप्त को लेखक की सर्वाधिक सहानुभूति प्राप्त हुई है किंतु यह सहानुभूति पाप-पुण्य विषयक दृष्टिकोण को अभिव्यंजित करने के लिए नहीं दी गई, अपितु लेखक के भागवादी-दर्शन को महत्व देने तथा परिस्थिति-दर्शन का समर्थन करने के लिए दी गई है। लेखक इच्छाओं के दमन को पाप बताना चाहता है, इस कारण उसने योगी को पापी तथा भोगी को पुण्यात्मा के रूप में उपस्थित किया है तथा उपसंहार में महाप्रभु रत्नांबर के माध्यम से अपने निजी दृष्टिकोण को निष्कर्ष रूप में सामने रखा है। गुरु रत्नांबर द्वारा दिया गया निष्कर्ष ही लेखक के निबंधों एवं पत्रों में स्पष्ट होता है।

जीवन के अनेक मार्गों को उपन्यास का नायक बीजगुप्त और लेखक वर्माजी देख रहे हैं। उसमें सच्चा मार्ग बताया है वह वास्तविक योग है। वास्तविक योग इस मार्ग को ही सच्चा मार्ग कह सकते हैं। इस मार्ग में सच्चाई तो होती है। सच्चे योगी के बारे में अगर कहेंगे तो - वही सच्चा योगी है जिसकी आत्मा निर्विकार है, जिसके लिए प्रत्येक वस्तु समान है और जिसने इंद्रियों पर विजय प्राप्त की है, निर्लिप्त रह कर। इंद्रियजित वही है जो इंद्रियों का समुचित उपयोग करता है - देखता है, सुनता है, छूता है, सूँघता है और स्वाद भी लेता है इत्यादि, किंतु वह विषयों में लिप्त नहीं होता। उसी प्रकार जैसे कमल का पत्ता पानी में रहते हुए उसके प्रभाव से मुक्त रहता है। जीवन का यही आदर्श है।[50] वास्तविक योग ही सच्चा मार्ग है तो इस मार्ग पर चलनेवाला इस उपन्यास का प्रमुख पात्र बीजगुप्त है। उसे ही योगी कह सकते हैं जिसमें अहंभाव का त्याग हो। बीजगुप्त में इसी प्रकार अहंभाव नहीं दिखाई देता, इसीलिए बीजगुप्त एक सामंत होने के कारण उसे भोगी कहा जा सकता है। मगर पूरे उपन्यास का अध्ययन करते हैं, तो ऐसा दिखाई देता है कि वह अंत में भोगी होकर भी उसका आचरण योगी के जैसा है। यही उसकी सबसे बड़ी विशेषता कह सकते हैं। इसका प्रमाण यह है कि जब श्वेतांक चित्रलेखा से प्रेम-याचना करने का अपराध करता है तो बीजगुप्त को क्रोधं तक नहीं आता और वह कहता है - 'तुमने जो कुछ किया, उसके विपरीत इन परिस्थितियों में दूसरा कोई कर ही नहीं सकता था।'[51]

वर्माजी ने बीजगुप्त का परिचय एक भोगी व्यक्ति के रूप में कराया है। किंतु वह भोगी होकर भी हर व्यक्ति के व्यक्तित्व का सम्मान करता है; वह एक सामान्य नर्तकी, या दासी क्यों न हो। व्यक्ति निरपेक्ष भोग की कामुकता उससे बहुत दूर है। बीजगुप्त एक सामंत है। उस काल में सामंत लोग ज्यादा से ज्यादा विलासी होते हैं। वह दूसरों की पर्वा नहीं करते। मगर बीजगुप्त एक सामंत होकर वह एक राजनर्तकी चित्रलेखा से भोग विलास करता है, मगर वह उसके प्रति एक पत्नी के जैसा व्यवहार भी करता है। वह उसे ही अपनी पत्नी मानता है। वह सौंदर्य का पूजक है। बीजगुप्त के व्यक्तित्व में विलासिता, भोगवृत्ति की प्रधानता के बावजूद भीरूता, नैतिक दौर्बल्य, निर्ममता, अस्पष्टवादिता छल-छद्म आदि का पूरी रूप से अभाव दिखाई देता है। बीजगुप्त जरूर ऐसा कुछ है इसके कारण महाप्रभु रत्नांबर को अपने शिष्य की दीक्षा के संदर्भ में उसके मनोनयन को प्रेरित करता है, चित्रलेखा को अपने से बँधे रहने के लिए विवश करता है, श्वेतांक को भी अपनी महानता के प्रति आश्वस्त करता है। और अनेक अपवादों से जुड़े होने के बावजूद अपनी कन्या के साथ विवाह

की लालसा मृत्युंजय के मन में जगाता है।[52] उसने चित्रलेखा को अपनाया है, किंतु उसके अपनाने में कहीं पापभावना का दंश नहीं है। इसलिए उसे यह कहने में जरा भी संकोच नहीं है कि उसका और चित्रलेखा का संबंध पतिपत्नी का-सा है। उसने यह मादकता की उन्माद में नहीं कहा, तो पुरे उत्तरदायित्व के साथ होशहवास की स्थिति में स्वीकार किया है। उसकी दृष्टि में उसका और चित्रलेखा का प्रेम संबंध आत्मिक संबंध है। परिणामतः वह स्पष्ट रूप से कहता भी है - 'मेरे प्रेम की अधिकारिणी कोई दूसरी स्त्री नहीं हो सकती।' वह चिंतक है और व्यक्ति, समाज, धर्म, प्रेम आदि पर व्यक्त उसके विचार लेखक के स्वयं के चिंतन का पूर्ण प्रतिनिधित्व करते हैं तथा प्रतिबिंबित लगते हैं। जीवन के बारे में उसे कभी कोई गलतफहमी नहीं रही। सही मायने में वह बिना कोई आदर्श ओढ़े यथार्थवादी जीवन में विश्वास रखता है। प्रेम को लेकर चित्रलेखा और यशोधरा के बीच वह संघर्षपूर्ण मनःस्थितियों से गुजरा है। प्रेम में एकनिष्ठता और एक से अधिक बार प्रेम कर पाने में व्यक्त उसकी असमर्थता उसके चरित्र को ऊँचा उठाती है। मृत्युंजय द्‌वारा अपनी पुत्री के विवाह के संबंध में रखे गए प्रस्ताव पर वह जो कुछ भी अन्य संभ्रांत लोगों की उपस्थिति में कहता है, वह उसकी स्पष्टवादिता, साहस और प्रेम के औदात्य को प्रकट करता है।[53] बीजगुप्त पूर्णतया भोगवादी है। लेखक के शब्दों में 'बीजगुप्त भोगी है, उसके हृदय में यौवन की उमंग है और आँखों में मादकता की लाली। उसकी अट्टालिकाओं में भोगविलास नाचा करते हैं, रत्न-जटित मदिरा के पात्रों में ही उसके जीवन का सारा सुख है, वैभव और उल्लास की तरंगों में वह केलि करता है, ऐश्वर्य की उसके हृदय में संसार की समस्त वासनाओं का निवास है, उसके द्‌वार पर मातंग झूमा करते हैं, उसके भवन में सौंदर्य के मद से मतवाली नर्तकियों का नृत्य हुआ करता है। ईश्वर पर उसे विश्वास नहीं, शायद उसने कभी ईश्वर के विषय में सोचा तक नहीं है और स्वर्ग तथा नरक की उसे कोई चिंता नहीं। आमोद-प्रमोद ही उसके जीवन का साधन है और लक्ष्य भी है।'[54] बीजगुप्त का हृदय प्रेम करने के लिए ही नहीं बल्कि मानवता के लिए भी विशाल है। वह अपने सुख के बजाय दुसरों के सुख के लिए त्याग करता है। इसीलिए श्वेतांक के जीवन को सुखी बनाने के लिए अपना सब-कुछ त्याग देता है। 'दूसरों के सुख में बाधक होना, केवल अपने सुख की आशा, कायरता है, नीचता नहीं। मैं अन्याय कर रहा हूँ, दूसरों के साथ और स्वयं अपने साथ भी। हमारे हिस्से में सुख और दुःख दोनों पड़े हैं - हमारा कर्तव्य है कि हम दोनों को ही साहसपूर्वक भोगें।'[55] इससे यह स्पष्ट होता है कि 'बीजगुप्त भोगी है, पर पतित नहीं। इसीलिए आर्य सम्राट चंद्रगुप्त तक उसके सम्मान में नतमस्तक हो जाते हैं।'[56] बीजगुप्त का जीवन दर्शन उसका कर्म भोग ही बन गया है। कर्म का भोग और भोग का कर्म।

'चित्रलेखा' उपन्यास में हम देखते हैं कि दार्शनिक-चेतना में एक ओर भाग्यवाद और दूसरी ओर भोगवाद है। मगर इन दोनों के बीच में नियति के साथ कार्य-कारण संबंध जोडकर वर्माजी ने भारतीय कर्मवाद की स्थापना की है। मनुष्य के मन में अनेक इच्छाएँ निर्माण होती रहती हैं। उसका कोई मूल्य नहीं है। वह स्वावलंबी नहीं, कर्ता नहीं, बस साधन मात्र है। इससे यह स्पष्ट होता है कि मनुष्य जो कुछ करता है वह परिस्थितिगत होने के कारण ही स्वभाविक लगता है। परंतु वर्माजी ऐसे परिस्थितिजन्य प्रेरणा से अनुप्राणित होते हुए भी, मनुष्य को अनुचित कार्य करने की छूट नहीं देते हैं। वे कहते हैं - 'मनुष्य की विजय वहीं संभव है, जहाँ वह परिस्थितियों के चक्र में पड़कर उसी के साथ चक्कर न खाए, वरन अपने कर्तव्याकर्तव्य का विचार रखते हुए उस पर विजय पावे।'[57]

बीजगुप्त भी परिस्थिति को महत्व का स्थान देता है। वह मानता है कि परिस्थिति के प्रभाव से बचना कठिन है, इस सत्य का उल्लेख करते हुए बीजगुप्त कहता है - श्वेतांक - मनुष्य स्वतंत्र विचार वाला प्राणी होते हुए भी परिस्थितियों का दास है। बीजगुप्त के विचारानुरूप यह जीवन का सार हमें इन पंक्तियों में दिखाई देता है। मनुष्य में एक अलग ही शक्ति है, पर परिस्थितियाँ भी अपना काम करती रहती हैं। इस प्रकार परिस्थिति और व्यक्ति के संबंधवाले सिद्धांत के अनुरूप बीजगुप्त आचरण भी करता है। जैसे श्वेतांक के विवाह के लिए वह प्रयत्न करता है। सिर्फ प्रयत्न नहीं करता, तो अपना सामंत पद और अपनी सारी संपत्ति श्वेतांक को दे देता है। उसके इस बर्ताव से उसकी उदारता और त्याग की गरिमा स्पष्ट दिखाई देती है। जहाँ पर वह मनुष्यत्व से देवत्व की मंजिल तक आ पहुँचा है। इस पात्र के प्रति वर्माजी के मन में सहानुभूति एवं आत्मीयता है। उसी प्रकार पाठक के मन में भी इस पात्र के प्रति सहानुभूति और प्रेम निर्माण होता है। उपन्यास में सिर्फ विशालदेव और कुमारगिरि ही बीजगुप्त के देवत्व को स्वीकार नहीं करते। उनके अलावा सभी पात्र उसे देवता की हद तक महान मान चुके हैं। श्वेतांक, चित्रलेखा, मृत्युंजय, यशोधरा सभी उसकी महानता का अनेक बार गुणगान करते हैं। यहाँ तक कि स्वयं सम्राट भी अन्य सामंतों और नर-नारियों की भीड़ के मध्य उसका हाथ अपने हाथ में लेकर घोषणा करते हैं - 'बीजगुप्त, तुम एक महान आत्मा हो, तुमने असंभव को संभव कर दिखाया। तुम मनुष्य नहीं हो, तुम देवता हो। आज भारतवर्ष का सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य तुम्हारे सामने मस्तक नमाता है।' [58] बीजगुप्त ने दूसरों के लिए बहुत त्याग किए, मगर स्वयं उसका जीवन दुःखमय हो जाता है, जब चित्रलेखा उसे छोड़कर कुमारगिरि के पास चली जाती है। चित्रलेखा से वियुक्त होने के बाद बीजगुप्त अपनी मानसिक पीड़ा को दूर करने के लिए काशीयात्रा जाने का निश्चय करता है। उसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि चित्रलेखा उसके जीवन का आधार है, परंतु जब चित्रलेखा उसे छोड़कर चली जाती है तब वह सब छोड़कर उसके पीछे दौड़ता नहीं है। अपने दुख में भी वह हताहत, ज्ञान-शून्य नहीं होता। यही उसकी निर्लिप्तता है, योग है और इसी तत्व को ग्रहण करने की शिक्षा श्वेतांक को देते हुए रत्नांबर उसे समझाते हुए कहते हैं, तुम्हें कर्तव्याकर्तव्य का विचार करना होगा इच्छाएँ प्रबलरूप धारण करके तुम्हें सताएँगी और तुम्हें उनका दमन करना पड़ेगा। यही तुम्हारी आत्मशक्ति की परीक्षा होगी। विजय और पराजय का क्षेत्र संसार निर्जन नहीं।

बीजगुप्त चित्रलेखा से ही सच्चा प्रेम करता है। इसी कारण उसके सामने अनेक प्रलोभन आते हैं। जैसे यशोधरा के रूप में यशोधरा का निष्कलंक सौंदर्य, उसका स्त्री-सुलभ भोलापन और बीजगुप्त के प्रति आकर्षण, यह सब इतने पर्याप्त हैं कि बीजगुप्त उनसे लाभ उठाकर चित्रलेखा के द्वारा पहुँचाए हुए घावों को भर सकता था। एक सामान्य मनुष्य की तरह उसे भी अंतद्र्वंद्व का सामना करना पड़ा। काशी यात्रा से लौटने के बाद अपने जीवन के सूनेपन को दूर करने के लिए यशोधरा से विवाह का विचार करने लगता है। किंतु उसे उस समय अपनी निर्बलता पर दुःख होता है कि वह एक स्त्री से प्रेम करके दूसरी स्त्री से विवाह करने के लिए उद्यत हो रहा है। वह यह भी सोचता है कि अगर वह यशोधरा से विवाह कर भी लेता है तो उससे सच्चा प्रेम कर सकेगा? उस समय ही उसे पता चलता है कि वह श्वेतांक से प्रेम करने लगी है। इस बात को जानकर भी केवल अपने सुख की आशा पर दूसरों के सुख में बाधक बनना उसके लिए उचित नहीं था। अतः यशोधरा से विवाह करने के विचार को वह भूल जाता है। बल्कि उन दोनों के विवाह के लिए अपनी सारी संपत्ति श्वेतांक को दे देता है। उसकी इस चारित्रिक उच्चता को देखकर मृत्युंजय उससे कहते हैं - 'आप मनुष्य नहीं देवता है।' सच्चे

योग में प्रेम का अत्यधिक महत्व है। बिना प्रेम के योग पूर्ण हो हीं नहीं सकता। मनुष्य वास्तव में विरागी नहीं हो सकता। विराग मृत्यु के समान है। जिसको साधारण रूप से विराग कहा जाता है, वह केवल अनुराग के केंद्र के बदलने का दूसरा नाम है।

बीजगुप्त अपनी सारी संपत्ति श्वेतांक को देकर सर्वस्व का त्याग करके अकिंचन रूप में नगर से निकल पड़ने पर भी चित्रलेखा को वह भुला नहीं पाता और वह उसका आतिथ्य ग्रहण करने के लिए उसके घर पर रुक जाता है। उसी समय उसे चित्रलेखा अपने पतित होने की सारी कहानी बता देती है। वह किस प्रकार कुमारगिरि की वासना का साधन बन चुकी है, यह सब समझने के बाद भी बीजगुप्त अपने सच्चे प्रेम के कारण उसे सहज ही अपना लेता है। वह समझता है कि प्रेम के प्रांगण में कोई अपराध नहीं होता। [39] यही उदारता उसकी उपन्यास में अनेक बार दिखाई देती है। उसकी यह सरलता व्यवहार के लिए ऊपर से ओढ़ी हुई नहीं, बल्कि उसके शील का ही एक अंग है। इसी उदारता के कारण इसके प्रति सभी के मन में सहानुभूति, आत्मीयता, प्रेम जागृत होता है।

उपन्यास में जीवन का सुख क्या है? जीवन के मार्ग क्या है? इसी प्रकार के और भी प्रश्न खड़े हुए हैं। जैसे की प्रेम क्या है? इसके बारे में भी उपन्यास में चित्रण दिखाई देता है। प्रेम जैसे परिवर्तनशील है या चिर है? इस प्रश्न के बारे में विचार करते हैं, तो उसका उदाहरण है - एकमात्र चित्रलेखा। इसका प्रेम परिवर्तनशील है। जैसे की हम शुरू से देखते आए हैं। विधवा होकर भी कृष्णादित्य से प्रेम करती है। कृष्णादित्य मरने के बाद बीजगुप्त के जीवन में आती है। प्रेम का आनंद लेते समय श्वेतांक पर उसका प्रभाव पड़ता है और अंत में योगी कुमारगिरि की ओर आकर्षित होती है। वह आत्मिक नहीं बल्कि शारीरिक प्रेम करती है। अगर चिर प्रेम के बारे में देखा जाए तो वह बीजगुप्त का ही है।

प्रेम के बारे में अनेक प्रश्न उपस्थित होते हैं जैसे - प्रेम की पूर्ण स्थिति तक पहुँचने के लिए कितनी सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ती है? जीवन के लिए बताए गए मार्गों में जो आदर्श हैं, उनमें कौन श्रेष्ठ हैं? मनुष्य परिस्थितियों का दास है या नियामक?

इन प्रश्नों के उत्तर हमें चाहिए तो वह हमें बीजगुप्त, चित्रलेखा और कुमारगिरि के अनुभवों से मिलते हैं। वर्माजी एक दार्शनिक हैं। चित्रलेखा, बीजगुप्त और कुमारगिरि प्रेम का त्रिकोण बनाते हैं, जबकि यशोधरा बीजगुप्त और श्वेतांक प्रेम का दूसरा त्रिकोण निर्मित करते हैं। इन प्रेमियों में मस्ती को जीवन का सुख चित्रलेखा मानती है, तो बीजगुप्त अंधकार को यौवन का अंत मानता है। सबसे ज्यादा प्रेम का अनुभव चित्रलेखा ने ही लिया है। दैवी, प्राकृतिक और कई रूपों में उसने प्रेम का साक्षात्कार किया है। जीवन का लक्ष्य संघर्ष है और प्रेम मनुष्य का पथ-प्रदर्शक है। पश्चिमी विचार धाराओं के अनुसार प्रेम के दो रूप हैं - एक शारीरिक और दूसरा आत्मिक। चित्रलेखा ने अनेक प्रकारसे प्रेम का अनुभव लिया है। विरह की अग्नि में जलते हुए प्रेम का दूसरा ही रूप उसने देखा है। चित्रलेखा ने दो विपरीत मनःस्थितियों में कुमारगिरि के प्रति कहे अपने कथनों में प्रेम के बारे में अपनी राय प्रकट की है। प्रथम स्थल पर वह प्रसन्न होकर योगी से दीक्षा देने के अपने अनुरोध के समय और दूसरे स्थल पर अपने छले जाने के बाद क्रोधी मुद्रा में, परंतु दोनों जगह प्रेम के स्वरूप के बारे में उसकी राय अपरिवर्तित है। वह योगी को प्रेम का अर्थ समझाते हुए कहती है - 'प्रेम का अर्थ है निस्सीम त्याग, जब कि

क्रोध में उसने कहा है - प्रेम बलिदान है, आत्मत्याग है, ममत्व का विस्मरण है।' [60] बीजगुप्त के साथ वार्तालाप के दौरान उसने प्रेम के परिवर्तनशील रूप को स्वीकारते हुए प्रेम और वासना में भेद स्थापित किया है। वह प्रेम को गंभीर और स्थायी मानती है। जबकि वासना को पागलपन और क्षणिक। [61] जब चित्रलेखा बीजगुप्त से विलग होकर आश्रम में रहने की अपनी जिद के समय उसने बीजगुप्त को बता दिया है कि प्रेम का प्रधान अंग विलास नहीं है। आत्मिक और शारीरिक, प्रेम के दो रूपों में से वह शारीरिक संबंध को फिलहाल बीजगुप्त से तोड़ रही है। [62] कुमारगिरि और चित्रलेखा दोनों में प्रेम पर चर्चा होती है। कुमारगिरि चित्रलेखा से पूछता तू किससे प्रेम करती है, मुझे धोखा देती है? जब कुमारगिरि द्वारा इसप्रकार आत्मिक संबंध पर आपत्ति किए जाने पर उसने बता दिया है कि आत्मिक संबंध कई व्यक्तियों से एक साथ किए जा सकते हैं। कुमारगिरि के साथ की बातचीत में उसने बताया है कि पुरुष का प्रेम अधिपत्य जमाना है, स्त्री का प्रेम अपने को पुरुष के हाथों में सौंप देना है। [63] उसी प्रकार चित्रलेखा उसके सामने अपने मत प्रकट करते हुए कहती है - 'स्त्री अपने से निर्बल मनुष्य से प्रेम नहीं कर सकती।' [64] चित्रलेखा ने बीजगुप्त और कुमारगिरि दोनों से भी प्रेम किया है उसको इन दोनों में फर्क दिखाई दिया। जैसे बीजगुप्त के प्रेम में ईमानदारी, अनन्यता और त्याग का प्रतीक है। कुमारगिरि विकृति का शिकार होने के कारण उसके वासनात्मक रूप में ही वह लिपटा रह जाता है। बीजगुप्त के प्रेम विषयक मत इस कथन से स्पष्ट होते हैं - 'प्रेम स्वयं एक त्याग है विस्मृति है, तन्मयता है। प्रेम के प्रांगण में कोई अपराध नहीं होता' [65] प्रेम क्या है? इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिए हमें चित्रलेखा का चरित्रांकन का अध्ययन करना होगा। इसमें उन्मुक्त प्रेम और काम-प्रवृत्ति की विशिष्टता का महत्व अंकित है। इसका सही उदाहरण चित्रलेखा का जीवन ही है। उसने अपने जीवन में अनेक बार प्रेम किया है - जैसे अपने पति से प्रेम किया और फिर कृष्णादित्य से और अंत में बीजगुप्त और कुमारगिरि से। इससे यह स्पष्ट होता है कि चित्रलेखा ने न जाने कितनी बार प्रेम की व्याख्या की थी, मगर प्रत्येक बार उसने यही अनुभव किया कि उसका पूर्व निर्णय गलत था। इस प्रकार चित्रलेखा के प्रेम का अध्ययन करना है तो प्रेम के कई रूप दिखाई देते हैं।

रूढ़िगत प्रेम - रूढ़िगत प्रेम यह विवाह द्वारा प्राप्त होता है। इस प्रेम में संस्कार छिपे होते हैं। ज्यादा से ज्यादा इस प्रकार का प्रेम पति और पत्नी में दिखाई देता है, होता है। इस प्रेम में धार्मिकता, पवित्रता और शुद्धता रहती है। इस प्रेम में हर व्यक्ति अपना कर्तव्य समझकर करता है। चित्रलेखा ने भी विवाह के पश्चात अपने पति से इसी प्रकार के प्रेम किया। उसके प्रेम में शांति थी, हलचल नहीं थी। और जब उसका पति मर जाता है तो उसका यह निस्सीम प्रेम समाप्त हो जाता है।

पाशविक प्रेम - पाशविक इस शब्द में ही इस प्रेम का अर्थ छिपा हुआ दिखाई देता है। पाशविक याने पशुतापूर्ण प्रेम। इस उपन्यास में कुमारगिरि और चित्रलेखा के संबंध में इस प्रकार का प्रेम दिखाई देता है। इस प्रेम में हलचल है, शारीरिक आकर्षण है। इसमें स्थायित्व न होने के कारण यह प्रेम सफल नहीं होता। इसमें कामवृत्ति के कारण प्रेम में वासना होती है। इसी कारण चित्रलेखा को कुमारगिरि के प्रति आकर्षणिक प्रेम होता है। वह ज्यादा पास आने से समाप्त हो जाता है।

वैवाहिक प्रेम -. यह प्रेम जो विवाह के परिणाम स्वरूप उत्पन्न होता है। यह प्रेम आधुनिक युग की आवश्यकता के अनुरूप ही है। इसलिए ऐसा प्रेम प्राकृतिक नहीं है। विवाह द्वारा इस प्रेम को अनिवार्य बनाया जाता है। इस प्रकार का प्रेम कृत्रिम ही है जो विवाह के बंधन में बंधने से उत्पन्न होता है। ऐसा प्रेम आत्मिक

नहीं है, एक मजबूरी-सी लगती है। वर्माजी प्रेम के लिए विवाह के बंधन को नहीं मानते। बीजगुप्त समाजिक नियमों और विधिवत रूप से चित्रलेखा को पत्नी नहीं बना सकता किंतु वह उसे अपनी पत्नी ही समझता है। 'चित्रलेखा मेरी पत्नी है। यद्यपि चित्रलेखा का पाणिग्रहण मैंने शास्त्रानुसार नहीं किया है . . . फिर भी मेरा और चित्रलेखा का संबंध पति-पत्नी का-सा है। मैं प्रेम में विश्वास करता हूँ।' [66]

प्राकृतिक प्रेम - प्रेम के बारे में सच्चा और प्राकृतिक प्रेम दो आत्माओं का एकीकरण है। इसी एकीकरण के लिए कई स्थितियाँ पार करनी पड़ती हैं। पहली स्थिति में दोनों में मिलन के लिए बड़ी आतुरता होनी चाहिए। सच्चे प्राकृतिक प्रेम के बारे में जानना है तो उसमें पहले आकर्षण होता है, फिर मिलन की आतुरता। मिलन के बाद आत्मविस्मृति और फिर त्याग, ये हैं प्राकृतिक प्रेम की सीढ़ियाँ। इस उपन्यास का पात्र बीजगुप्त इसी मार्ग पर चलता हुआ दिखाई देता है। जैसे की वह शुरू में चित्रलेखा के प्रति आकृष्ट हुआ, उसको प्राप्त करने के बाद भी उसका प्रेम स्थायी रहा। यह एक ऐसी स्थिति है जहाँ प्रेम और वासना में विवेक करना बड़ा कठिन होता है। प्रेम और वासना में इतना ही अंतर है वासना का संबंध बाह्य से है। परिवर्तन यह प्रकृति का नियम है। मगर आत्मा या प्रेम में कभी परिवर्तन नहीं है। इस प्रेम में मानव मन, प्रवृत्ति के अनुसार परिवर्तन आता रहता है। जैसे चित्रलेखा का प्रेम है।

शुद्ध प्रेम - इस उपन्यास में सिर्फ बीजगुप्त का प्रेम ही उच्च्य कोटिका है। इसी उच्च्य स्तर तक चित्रलेखा पहुँच न सकी। इसीलिए उसने अपने जीवन में अनेक व्यक्तियों से प्रेम किया था। उसके मतानुसार वासना और प्रेम अलग-अलग हैं। बल्कि प्रेम में ही वासना है। बीजगुप्त ही शुद्ध प्रेम करता है। उसके प्रेम में त्याग सहनशीलता और उदारता आदि गुण हैं। इन्हीं गुणों के कारण उसका चरित्र आदर्शपूर्ण बन जाता है। उसके प्रेम में स्थायित्व गुण है। वह चित्रलेखा से प्रेम करता है। और अंततक करता ही रहता है। उसपर यशोधरा के सौंदर्य का परिणाम होता है। मगर वह अपने सच्चे प्रेम को भूल नहीं सकता। अंत तक चित्रलेखा को ही याद रखता है। चित्रलेखा के लिए वह सारा वैभव त्याग देता है और उसके पतित होने पर भी, उसे क्षमा करके अपना लेता है। यही उसकी महानता है।

'चित्रलेखा' की मूल समस्या पाप और पुण्य की है, इसमें कोई संदेह नहीं, किंतु इस समस्या को व्यापक संदर्भ में न उठाकर मानव जीवन के एक पक्ष तक ही सीमित रखा गया है। वस्तुतः एक ही समस्या को लेकर नाना उपन्यासों की रचना की जा सकती है, विषयवस्तु का चुनाव भिन्न हो सकता है। यह लेखक की रुचि एवं दृष्टिकोण पर निर्भर करता है कि वह उसे किस संदर्भ में उठाता है, अथवा उसके किन बिंदुओं को रूपायित करता है। 'चित्रलेखा' में वर्माजी ने पाप-पुण्य जैसी शाश्वत समस्या को उपस्थित करने के लिए प्रेम को उपन्यास का मुख्य विषय बनाया है। स्वच्छंद प्रेम, विधवा नर्तकी का पर-पुरुष से प्रेम आदि पुण्य है अथवा पाप? ये प्रश्न लेखक के मन को आकुल किए हुए हैं। उस अकुलाहट को उसने प्रेम पर आधारित कथानक के माध्यम से व्यक्त किया है। वर्माजी ने सामाजिक मान्यताओं का निषेध करते हुए प्रेम को नारी और पुरुष के बीच प्रकृत-आकर्षण के रूप में प्रस्तुत किया है। उपन्यास का मूल बिंदु है - चित्रलेखा और बीजगुप्त का स्वच्छ एवं निर्मल प्रेम। बाह्य आचरण चाहे दोनों का कुछ भी हो लेकिन वे प्रेम की उच्च्य-भूमि पर प्रतिष्ठित हैं। चित्रलेखा इस विषय में बीजगुप्त के समक्ष कुछ हल्की पड़ती है किंतु अंततः उसके मन में भी प्रेम की दुग्ध-धवल धारा परिस्थितियों के पत्थरों को फोड़कर निर्मल रूप में बह निकलती है। बीजगुप्त की त्याग-भावना चित्रलेखा को

अनन्यता का पाठ पढ़ाती है और अंततः वह भी प्रेम की ऊँचाइयों का स्पर्श करती है। दोनों के प्रेम का पर्यवसान त्याग में होता है जो प्रेम के स्वच्छंदतावादी रूप की प्रतीति कराता है। कुमारगिरि और चित्रलेखा के संबंधों की ऐसी परिणति दिखाकर लेखक ने स्पष्ट किया है कि वासनाजनित प्रेम चिरस्थायी नहीं होता; वह पतन की ओर ही ले जाता है। प्रेम आत्मा का संबंध है जिसमें त्याग एवं आत्मविस्तार का अत्यधिक महत्व है। उपन्यास में श्वेतांक एवं मृत्युंजय के प्रेम संबंधी विचारों का समावेश भी लेखक की प्रेम विषयक उपर्युक्त विचारधारा की पुष्टि हेतु किया गया है। श्वेतांक प्रेम में एक दूसरे की आत्मा को अच्छी तरह से जान लेना आवश्यक समझता है, तो मृत्युंजय प्रेम के क्षेत्र में किए गए त्याग को महान मानते हैं। चित्रलेखा को भी सर्वस्व लुटाकर आत्मग्लानि की असह्य ज्वाला में जलने के बाद बीजगुप्त के प्रेम की एक निष्ठता एवं त्याग से परिचित होते हुए दिखाया गया है। वासना और प्रेम के मध्य पेंडुलम की भाँति झूलने के पश्चात् अंततः वह प्रेम के आत्मिक रूप को जान पाती है। अब वह वैभव, मादकता, अहम् की तृप्ति आदि कुछ नहीं चाहती, केवल प्रेम चाहती है, आत्मा का पवित्र सात्विक प्रेम। चित्रलेखा को प्रेम के इन विविध सोपानों से गुजरते हुए दिखाकर वर्माजी ने प्रेम में परस्पर निःस्वार्थ आत्मसमर्पण को महत्व दिया है जिसे उनकी स्वच्छंदतावादी विचारधारा का प्रतिफलन कहा जा सकता है।

स्वच्छंदतावादी प्रेम में समतुल्यता आवश्यक नहीं। उपन्यास में कुमारगिरि के कथन तथा श्वेतांक एवं बीजगुप्त के आचरण द्वारा इसे व्यक्त किया गया है। श्वेतांक के हृदय में यशोधरा के प्रति प्रेम अंकुरित होता है। वह अपनी सामर्थ्य एवं बीजगुप्त तथा यशोधरा के विवाह की संभावना से परिचित हैं और यह भी जानता है कि यशोधरा उससे प्रेम नहीं करती, किंतु इससे क्या? मैं तो उससे प्रेम करता हूँ सोचकर वह प्रेम किए जाता है। वह यह जानने की चेष्टा कभी नहीं करता कि वह यशोधरा के हृदय में स्थान बना पाया है अथवा नहीं क्योंकि उसका विश्वास हैं कि प्रेम किया जाता है, कहा नहीं जाता। आवश्यक नहीं प्रेम करते हुए प्रेमी से बदले की आशा भी रखी जाए। कुमारगिरि भी एक स्थान पर चित्रलेखा से कहता है - 'प्रेम में बदले की आशा करना ठीक हो सकता है, पर उस आशा को सफलीभूत बनाने की चेष्टा करना अनधिकार चेष्टा है।' हालांकि उसके इस कथन से उसके आचरण की संगति नहीं बैठती।

चित्रलेखा के कुमारगिरि के पास चले जाने पर भी बीजगुप्त का उससे घृणा न करना तथा उसकी खातिर अपना सर्वस्व त्याग देना इस बात का परिचायक है कि स्वच्छंदतावादी प्रेम में प्रेमी किसी प्रकार के प्रतिदान की आशा किए बिना प्रेमी के हित में अपना जीवन तक समर्पित करने को तैयार रहता है। उपन्यास के प्रारंभ में बीजगुप्त प्रेम के लौकिक, सहज, प्रवृत्तिमूलक एवं प्राकृतिक रूप का समर्थक है। वह भोगी है, किंतु वासना एवं कामुकता से दूर है। वह चित्रलेखा को अपनाता हैं किंतु सामान्य की तरह उसे विलास की सामग्री मात्र नहीं समझता अपितु उसे 'पत्नी के बराबर' स्थान देता है। उसके अपने प्रेम की अधिकारिणी केवल 'चित्रलेखा' है। प्रेम ही उसके जीवन का निर्धारित लक्ष्य है जिसमें मनुष्य अपने आपको पूर्ण रूप से समर्पित कर देता है। प्रेम ही उसकी जीवनी शक्ति है जो अंततः उसके उन्नयन में सहायक होती है। स्वच्छंदतावादी प्रेम के समान उसके हृदय में चित्रलेखा के प्रति प्रेम का अंकुरण अत्यंत सहजता से हो जाता है। वह अपना और चित्रलेखा का आत्मिक-संबंध मानता है जिसमें उन्माद की क्षणिकता का कोई स्थान नहीं। भावना को महत्व देने के कारण बीजगुप्त का प्रेम स्वच्छंद और नैसर्गिक है जिसमें तीव्रता एवं गहराई होने के बावजूद शारीरिक मर्यादा एक सीमा तक बनी रहती है। उसके लिए प्रेम दो हृदयों के परस्पर मिलन की अभिलाषा का द्योतक है, सुरा की मादकता

है। जिसका एक बार आस्वादन कर लेने वाला मनुष्य इसे जीवन भर नहीं छोड़ सकता, यह ऐसी प्राकृतिक प्रेरणा है जिसमें प्रेम केवल प्रेम करने के लिए किया जाता है, अर्थलिप्सा अथवा किसी प्रकार के स्वार्थ के वशीभूत होकर नहीं। चित्रलेखा को अपनाते हुए उसके मन में कहीं अपराध-बोध अथवा पाप-भावना नहीं है। वह उसके पूर्व जीवन को महत्व नहीं देता और सामाजिक मान्यताओं के विरुद्ध विधवा नर्तकी से प्रेम करता है। ऐसा चित्रित करते हुए लेखक प्रेमविषयक उस स्वच्छंदतावादी मान्यता को प्रतिष्ठा देना चाहता है जिसके अनुसार प्रेम न हर कुलीन नारी की बपौती है, न हर वेश्या के लिए वर्जित। प्रेम की खोज वर्गों में नहीं व्यक्तियों में की जानी चाहिए। उसने दिखाया है कि सामाजिक नियमों के अनुसार नर्तकी से विवाह करने की अनुमति न थी, इसे जानने के बावजूद बीजगुप्त विवाह विषयक रूढ़ियों की अवहेलना करते हुए स्त्री एवं पुरुष के चिरस्थायी संबंधों को ही विवाह मानता है तथा घोषणा करता है। वह जानता है कि चित्रलेखा से उत्पन्न संतान उसकी संपत्ति की उत्तराधिकारी नहीं हो सकती, फिर भी वह अन्य किसी स्त्री को अपने जीवन में स्थान देने को तैयार नहीं। सामाजिक मान्यताओं की उसे चिंता नहीं। सामंत युग में नर्तकी के पास जाना, उससे सहवास करना साधारण बात थी। इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि बीजगुप्त के नर्तकी के प्रति प्रेम में सामाजिक मान्यताओं के खंडन जैसी कोई बात नहीं, किंतु ध्यातव्य है कि चित्रलेखा को ऐसी नर्तकी के रूप में चित्रित नहीं किया गया, जिसके पास प्रत्येक सामंत अपने मन-बहलाव के लिए जा सकता है। उपन्यासकार ने बार-बार इसे रेखांकित किया है कि 'चित्रलेखा' वेश्या न थी केवल नर्तकी थी। उसने स्पष्ट कहा है अनेक लक्षाधीश नवयुवक तथा बड़े-बड़े शक्तिशाली सरदार उसके प्रणय के प्यासे थे, किंतु वह जनसमुदाय के सामने आती और विद्युत की भाँति चमककर उनके सामने से लोप हो जाती थी। नर्तकी होते हुए भी उपन्यासकार ने उसे बीजगुप्त के अतिरिक्त अन्य किसी से धन के कारण अथवा अन्य किसी स्वार्थ से प्रेम करती नहीं दिखाया। उस काल में नर्तकी के पास जाना सामान्य बात समझी जाती थी, किंतु नर्तकी को पत्नी मानकर सदा के लिए अविवाहित रहने की घोषणा कर देना निश्चय ही सामाजिक मर्यादा लोलुप सामंत वर्ग में से किसी साहसी सामंत का ही कार्य हो सकता है जो प्रेम को सर्वोपरि मानते हुए सामाजिक प्रतिष्ठा को उस पर बलिदान कर देने की सामर्थ्य रखता हो। बीजगुप्त ने प्रेम के क्षेत्र में साहस दिखाते हुए अपने स्वछंद दृष्टिकोण का परिचय दिया है। यह और बात है कि लेखक उसे सामाजिक रूढ़ियों के विरुद्ध जाकर विवाह करते हुए नहीं दिखाता किंतु इससे बीजगुप्त के प्रेम विषयक स्वच्छंद दृष्टिकोण की प्रस्तुति में कोई बाधा नहीं पहुँचती। लेखक प्रेम के स्वच्छंद रूप की ही प्रतिष्ठा करना चाहता है, इसमें संदेह नहीं। समाजविरोधी मुद्रा अपनाते हुए भी यदि वह बीजगुप्त के प्रेम को नैतिकता के परंपरागत मानदंडों को तोड़ते हुए विवाह की सीमा तक नहीं पहुँचा। इस प्रकार प्रेम का बड़ा ही सुंदर प्रतिपादन 'चित्रलेखा' में हुआ है।

संसार में पाप क्या है और पुण्य क्या है? यह बताना बहुत ही कठिन काम है। धर्म क्या है और अधर्म क्या है, यह भी तय करना बहुत कठिन है। इसी कारण ही संसार में पाप की कोई एक परिभाषा नहीं हो सकती। 'हम न पाप करते हैं न पुण्य करते हैं। हम केवल वही करते हैं जो हमें करना पड़ता है।' [67] ऐसी स्थिति में पाप-पुण्य के बारे में नहीं कह सकते। जो मनुष्य करता ही नहीं है, उसे किस प्रकार बताया जाए। सुख खोजनेवाला साधुओं को ढोंगी और पापी समझता है। श्वेतांक के अनुसार कुमारगिरि पशु है, पापी है, क्योंकि उसने संसार की बाधाओं से मुँह मोड लिया था। विशालदेव के अनुसार बीजगुप्त पापी है, वासना का दास है। दोनों के भिन्न

दृष्टिकोणों के अंतर का कारण है - भिन्न-भिन्न परिस्थितियाँ, जिसमें वे दोनों पले थे। सुख प्राप्त करना मनुष्य का स्वभाव है। एक मनुष्य को चोरी या व्यभिचार में सुख मिलता है, तो दूसरे को योगाभ्यास में। दोनों प्रकार के कर्मों की मूल प्रेरक शक्ति सुख की भावना है, तब किसे पाप समझा जाए, किसे पुण्य। उपन्यास में जीवन में भौतिक-सुखों का भरपूर आनंद उठाने पर बल दिया गया है, लेकिन वर्माजी भौतिक-सुखों को महत्व देते हुए भी उनके उदात्तीकरण को आवश्यक मानते हैं। यही कारण है कि वे बीजगुप्त के हृदय में समस्त वासनाओं का वास दिखाकर भी अंत में उसे अपनी भावनाओं का उदात्तीकरण करते हुए दिखाते हैं। वह ऐश्वर्य का त्याग कर 'परहित' के लिए 'स्वहित' का बलिदान कर जीवन के भौतिक-धरातल पर देवत्व का स्पर्श करता है। उसके द्‌वारा किए गए त्याग को महान रूप में प्रस्तुत किया गया है। सम्राट चंद्रगुप्त तक को उसे सिर नवाते हुए दिखाया गया है। चित्रलेखा एवं बीजगुप्त, दोनों के सर्वस्व त्याग द्‌वारा लेखक जहाँ यह प्रतिपादित करना चाहता है कि भोग से होकर वैराग्य की ओर जाना सुगम है, वहीं वह अतिभोगवाद से बचने का परामर्श देता है। प्रेमी युगल द्‌वारा सामंती भोग-विलास, वैभव एवं ऐश्वर्य को त्यागना सामंतशाही की निस्सारता तथा अतिभोगवाद की व्यर्थता को भी सिद्‌ध करता है। स्पष्ट है कि लेखक ने निवृत्ति एवं प्रवृत्ति में से मध्यम मार्ग को श्रेष्ठ ठहराया है। चित्रलेखा के अति भोगवाद और कुमारगिरि की अतिसाधना की भयंकर परिणति तथा बीजगुप्त के मध्यम-मार्ग को श्रेयस्कर प्रमाणित करने के मूल में लेखक का समन्वयवादी दृष्टिकोण रहा है। स्वयं महाप्रभु रत्नांबर द्‌वारा श्वेतांक एवं विशालदेव को साधना के शुष्क क्षेत्र से निकालकर जीवन के अपरिमित क्षेत्र में भेजकर अनुभव ग्रहण करने की प्रेरणा देना ही इस ओर संकेत करता है कि अनुभव के बिना कोरे ज्ञान का महत्व नहीं है। दोनों के समुचित सामंजस्य की आवश्यकता है। आज के दार्शनिक भी भाव एवं बुद्‌धि के समुचित समन्वय पर बल देते हैं।

इस प्रकार वर्माजी ने 'चित्रलेखा' उपन्यास पूरी तरह दार्शनिकता के आधारपर बनाया है, निर्मित किया है। इस उपन्यास में पात्रों की निर्मिति भी दार्शनिकता के आधार पर हुई है। दार्शनिकता भरे प्रश्नों को उपन्यास में पात्रों के जरिए उभारा है। और उसमें वर्माजी सफल भी हो गए हैं।

निष्कर्ष

'चित्रलेखा' उपन्यास की निर्मिति ही दार्शनिक पृष्ठभूमि पर की है, इसीलिए यह दार्शनिक उपन्यास है। श्री भगवतीचरण वर्माजी का मूल उद्‌देश्य रहा है कि मनुष्य के आचरण संबंधी व्याख्या करना। लेखक ने आचरण के भिन्न-भिन्न सिद्‌धांतों जैसे प्रवृत्तिमार्ग, निवृत्तिमार्ग, अध्यात्मवाद, ईश्वर और अंतरात्मा का विश्लेषण किया है। लेखक स्वयं एक दार्शनिक हैं। वे मानते हैं कि उक्त समस्याओं पर प्रकट किए हुए विचार उनके अपने हैं। मगर अपने विचार मानने के लिए पाठकों को बाध्य नहीं करते। जैसे महाप्रभु रत्नांबर के मुख से वे अपना मत प्रकट करते हैं, 'यह मेरा मत है, तुम लोग इससे सहमत हो या न हो, मैं तुम्हें बाध्य नहीं करता और न कर सकता हूँ।'

लेखक ने अपने दृष्टिकोण के अनुसार ही इन समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न किया है। 'पाप-पुण्य' की समस्या के विषय में लेखक का स्पष्ट मत है कि संसार में पाप कुछ भी नहीं है, वह केवल मनुष्य के दृष्टिकोण की विषमता का दूसरा नाम है। मनुष्य में ममत्व प्रधान है। प्रत्येक मनुष्य सुख

चाहता है। कुछ सुख को धन में देखते हैं, कुछ मदिरा में, कुछ व्यभिचार में, कुछ त्याग में, पर सुख प्रत्येक व्यक्ति चाहता है।

संक्षेप में श्री भगवतीचरण वर्मा को दार्शनिक चिंतन प्रकट करने में पर्याप्त सफलता मिली है। इसी दार्शनिक पृष्ठभूमि के कारण 'चित्रलेखा' उपन्यास अत्यंत लोकप्रिय हुआ।

	संदर्भ		पृष्ठ
1.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	6
2.	चित्रलेखा एक अध्ययन	रामखेलावन चौधरी लक्ष्मीनारायण टंडन	44
3.	चित्रलेखा एक अध्ययन	रामखेलावन चौधरी लक्ष्मीनारायण टंडन	44
4.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	177
5.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	177
6.	चित्रलेखा सृजनात्मक अनुकृति	वीणा अग्रवाल	14
7.	हिंदी उपन्यास अंतरंग पहचान	डॉ. प्रेमकुमार	16
8.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	5
9.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	26
10.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	24
11.	भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युगचेतना	डॉ. बैजनाथ प्रसाद शुक्ल	336
12.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	177
13.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	87
14.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	99
15.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	144
16.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	177
17.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	33
18.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	60
19.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	7
20.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	24
21.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	9
22.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	10
23.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	33
24.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	5

25.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	32
26.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	177
27.	चित्रलेखा एक अध्ययन	भगवतीचरण वर्मा	46
28.	चित्रलेखा सृजनात्मक अनुकृति	वीणा अग्रवाल	24
29.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	100
30.	भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युगचेतना	डॉ. बैजनाथ प्रसाद शुक्ल	358
31.	चित्रलेखा सृजनात्मक अनुकृति	वीणा अग्रवाल	26
32.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	9
33.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	36
34.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	57
35.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	7
36.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	85
37.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	88
38.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	39
39.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	31
40.	हिंदी उपन्यास अंतरंग पहचान	डॉ. प्रेमकुमार	20
41.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	81
42.	हिंदी उपन्यास : विविध आयाम	डॉ. चंद्रभानू सोनावणे	39
43.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	157
44.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	160
45.	चित्रलेखा : एक अध्ययन	भगवतीचरण वर्मा	55
46.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	33
47.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	18
48.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	126
49.	चित्रलेखा : एक अध्ययन	भगवतीचरण वर्मा	57
50.	चित्रलेखा : एक अध्ययन	भगवतीचरण वर्मा	57
51.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	27
52.	हिंदी उपन्यास अंतरंग पहचान	भगवतीचरण वर्मा	19
53.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	77
54.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	7
55.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	165
56.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	172

57.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	60
58.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	171-172
59.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	175
60.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	160
61.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	66
62.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	105
63.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	134
64.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	134
65.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	175
66.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	77
67.	चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	177